उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष– १२ १९९३ –फरवरी अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन। ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जिसने ईश्वर के दर्शन किए हैं वही ठीक-ठीक ज्ञानी है। उसका स्वभाव बालक जैसा हो जाता है। बालक के भी अलग व्यक्तित्व होता है, अस्मिता होती है, परन्तु वस्तुतः वह केवल आकार मात्र है। बालकों का 'अहं' बड़ों के 'अहं' की तरह हानिकारक नहीं होता।

(२)

कई लोग सोचते हैं कि पुस्तक नहीं पढ़ने से ईश्वर विषयक ज्ञान नहीं होता, विद्या नहीं मिलती। परन्तु पढ़ने से सुनना अच्छा है, और सुनने से भी अच्छा है देखना। स्वयं पढ़ने के बजाय आचार्य के मुख से सत्य का श्रवण करने पर धारणा अधिक गहरी होती हैं, परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन का प्रभाव सबसे अधिक होता है। काशी के बारे में पढ़ने के बजाय जो काशी जाकर आया है उसके मुख से सुनना ज्यादा अच्छा है; किन्तु सबसे अच्छा तो यही है कि स्वयं अपनी आँखों काशी के दर्शन कर लिये जाएँ।

(३)

क्या भगवान् धन-ऐश्वर्य के वश में हैं ? नहीं; वे तो भक्ति के वश में हैं। वे रुपया नहीं चाहते—भाव, भक्ति, प्रेम, विवेक, वैराग्य यही सब चाहते हैं।

श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन

अब तो भला विचार किया है

—स्वामी वागीश्वरानन्द

मूल बंगला भजन

(धुन—रामप्रसादी : ताल—एकताल)

एवार आमि भालो भेवेछि ।
भालो भावीर काछे भाव शिखेछि ॥ध्रु०॥

जे देशे रजनी नाइ
सेइ देशेर एक लोक पेयेछि ।
आमि किबा दिवा किबा संध्या
संध्यारे वंध्या करेछि ॥१॥

घुम भेंगेछे, आर कि घुमाइ,
युगे युगे जेगे आछि ।
योगनिद्रा तोरे दिये मा,
घुमेरे घुम पाड़ायेछि ॥२॥

सोहागा गंधक दिये
खासा रंग चढ़ायेछि ।
मणिमंदिर मेजे लबो
अक्ष दुटि कोरे कुंचि ॥३॥

'प्रसाद' बोले—भुक्ति-मुक्ति
उभये मायाम रेखेछि ।
आमि कालीब्रह्म जेने मर्म
धर्माधर्म सब छेड़ेछि ॥४॥

(श्रीरामप्रसाद)

भावानुवाद

राग—झिंझोरी : ताल—कहरवा)

अब तो भला विचार किया है ।
अच्छे भाविकजन से मैंने
सही भाव वह सीख लिया है ॥ध्रु०॥

जहाँ नहीं निशि उसी देश का
एक आदमी मिला लिया है ।
क्या दिन, क्या निशि, संध्या को तो
मैंने वंध्या बना दिया है ॥१॥

नींद खुल गयी, अब क्या सोऊँ ?
युग-युग से मन जाग गया है ।
सौंप योगनिद्रा तुझको माँ
निंदिया को ही सुला दिया है ॥२॥

मिला सुहागा-गंधक मैंने
सोने पर रंग चढ़ाया है ।
मणिमंदिर माँजने कचिका
अक्षों को ही बना लिया है ॥३॥

'प्रसाद' ने भुक्ति-मुक्ति दोनों,
अपने सिर पर बिठा लिया है ।
'कालि ब्रह्म है'—मर्म जान यह,
सब धर्माधर्म तज दिया है ॥४॥

(सारदातनय)

भारत का भविष्य

—स्वामी विवेकानन्द

भारत की सन्तानों, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है। कितनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नजर डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता : अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः जहाँ तक हो सके, अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है, आकण्ठ उसका जल पीओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से और भी ऊंचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले यह बात हमें याद करनी होगी। हमें समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौन सा खून हमारी नसों में बह रहा है, उस खूनपर हमें विश्वास करना होगा। और अतीत के उसके कृतित्व पर भी, इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम अवश्य एक ऐसे भारत की नींव डालेंगे, जो पहले से श्रेष्ठ होगा। अवश्य ही यहाँ बीच-बीच में दुर्दशा और अवनति के युग भी रहे हैं, पर उनको मैं अधिक महत्त्व नहीं देता। हम सभी उसके विषय में जानते हैं। ऐसे युगों का होना आवश्यक था। किसी विशाल वृक्ष से एक सुन्दर पका हुआ फल पैदा हुआ। फल जमीन पर गिरा, मुरझाया और सड़ा। इस विनाश से जो अंकुर उगा, संभव है वह पहले के वृक्ष से बड़ा हो जाय। अवनति के जिस युग के भीतर से हमें गुजरना पड़ा, वे सभी आवश्यक थे। इसी अवनति के भीतर से भविष्य का भारत आ रहा है, वह अंकुरित हो चुका है, उसके नये पल्लव निकल चुके हैं। और उस शक्तिधर विशालकाय ऊर्ध्वमूल वृक्ष का निकलना शुरू हो चुका है। और उसी के सम्बन्ध में मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।

किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल और गुरुतर हैं। जाति, धर्म, भाषा, शासन-प्रणाली ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र की सृष्टि करते हैं। यदि एक-एक जाति को लेकर हमारे राष्ट्र से तुलना की जाए तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से संसार के दूसरे राष्ट्र संगठित हुए हैं, वे संख्या में यहाँ के उपादानों से कम हैं। यहाँ आर्य हैं, द्रविड़ हैं, तातार हैं, तुर्क हैं, मुगल हैं, यूरोपीय हैं,—मानो संसार की सभी जातियाँ इस भूमि में अपना-अपना खून मिला रही हैं। भाषा का यहाँ एक विचित्र ढंग का जमावड़ा है, आचार-व्यवहारों के संबंध में दो भारतीय जातियों में जितना अन्तर है, उतना पूर्वी और यूरोपीय जातियों में नहीं।

हमारी एकमात्र सम्मिलन भूमि है हमारी पवित्र परम्परा, हमारा धर्म। एक मात्र सामान्य आधार वही है, और उसी पर हमें संगठन करना होगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में राष्ट्रीय एकता का आधार धर्म ही है, अतः भारत के भविष्य-संगठन की पहली शर्त के तौर पर उसी धार्मिक एकता की आवश्यकता है। देश भर में एक ही धर्म सब को स्वीकार करना होगा। एक

ही धर्म से मेरा क्या मतलब है ? यह उस तरह का एक ही धर्म नहीं, जिसका ईसाइयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है। हम जानते हैं, हमारे विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हों हमारे धर्म में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायों द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायों के ऐसे कुछ सामान्य आधार अवश्य हैं। उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में अद्भुत विविधता के लिए गुंजाइश हो जाती है और साथ ही विचार और अपनी रुचि के अनुसार जीवन निर्वाह के लिए हमें सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है। हम लोग, कम से कम वे जिन्होंने इस पर विचार किया है, यह बात जानते हैं। और अपने धर्म के ये जीवनप्रद सामान्य तत्व हम सब के सामने लाएं और देश के सभी स्त्री-पुरुष, बाल वृद्ध, उन्हें जानें-समझें तथा जीवन में उतारें-यही हमारे लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम यही हमारा कार्य है।

अतः हम देखते हैं कि एशिया में और विशेषतः भारत में जाति, भाषा, समाज-संबंधी सभी बाधाएँ धर्म की इस एकीकरण-शक्ति के सामने उड़ जाती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय मन के लिए धार्मिक आदर्श से बड़ा और कुछ भी नहीं है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूलमंत्र है, और हम केवल सब से कम बाधावाले मार्ग का अनुसरण करके ही कार्य में अग्रसर हो सकते हैं। यह केवल सत्य ही नहीं कि धार्मिक आदर्श यहाँ सब से बड़ा आदर्श है किन्तु भारत के लिए कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। पहले उस पथ को सुदृढ़ किये बिना, दूसरे मार्ग से कार्य करने पर उसका फल घातक होगा। इसीलिए भविष्य के भारत-निर्माण का पहला कार्य, वह पहला सोपान जिसे युगों के उस महाचल पर खोदकर बनाना होगा, भारत की यह धार्मिक एकता ही है। यह शिक्षा हम सब को मिलनी चाहिए कि हम हिन्दू द्वैतवादी विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी, अथवा दूसरे सम्प्रदाय के लोग, जैसे शैव, वैष्णव, पाशुपत आदि भिन्न-भिन्न मतों के होते हुए भी आपस में कुछ समान भाव भी रखते हैं और अब वह समय आ गया है कि अपने हित के लिए, अपनी जाति के हित के लिए हम इन तुच्छ भेदों और विवादों को त्याग दें। सचमुच ये झगड़े बिल्कुल वाहियात हैं। हमारे शास्त्र इनकी निन्दा करते हैं हमारे पूर्व पुरुषों ने इसके बहिष्कार का उपदेश दिया है, और वे महापुरुषगण जिसके वंशज हम अपने को बताते हैं और जिनका खून हमारी नसों में बह रहा है, अपनी सन्तानों को छोटे-छोटे भेदों के लिए झगड़ते हुए देखकर उनको घोर घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

लड़ाई-झगड़े छोड़ने के साथ ही अन्य विषयों की उन्नति अवश्य होगी, यदि जीवन का रक्त सशक्त एवं शुद्ध है तो शरीर में विषैले कीटाणु नहीं रह सकते। हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवन रक्त है। यदि यह साफ बहता रहे, यदि वह शुद्ध एवं सशक्त बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक, सामाजिक, चाहे जिस किसी तरह की ऐहिक त्रुटियाँ हों, चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुधर जाएगा।

क्योंकि यदि रोगवाले कीटाणु शरीर से निकाल दिये जाएँ तो फिर दूसरी कोई बुराई खून में नहीं समा सकती। उदाहरणार्थ आधुनिक चिकित्साशास्त्र की एक उपमा लो। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फैलने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विषैले कीटाणुओं का प्रवेश, दूसरा शरीर की अवस्था-विशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो जाए कि वह कीटाणुओं को घुसने दे, यदि शरीर की जीवनशक्ति इतनी क्षीण न हो जाए कि कीटाणु शरीर में घुसकर बढ़ते रहें, तो संसार में किसी भी कीटाणु में इतनी शक्ति नहीं जो शरीर में बैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक

मनुष्य के शरीर के भीतर सदा करोड़ों कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं परन्तु जब तक शरीर बलवान् है, हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमजोर हो जाता है, तभी ये विषैले कीटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है जब राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति समाज, शिक्षा और बुद्धि को रुग्ण बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हमें इस बीमारी की जड़ तक पहुँचकर रक्त के कुल दोषों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान् हो खून शुद्ध और शरीर तेजस्वी हों, जिससे वह सब बाहरी विषों को दबा और हटा देने लायक हो सके।

□

आविर्भाव तिथि के अवसर पर

प्रेमस्वरूप श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि ईश्वर अनंत है परंतु उनकी इच्छा हो तो वे मनुष्यरूप में अवतीर्ण हो सकते हैं। अवतार के भीतर से ही हम ईश्वर की प्रेम-भक्ति का आस्वादन कर सकते हैं। वे अवतार ग्रहण कर सकते हैं इसका अनुभव होना चाहिए। यह बात उपमा के द्वारा नहीं समझायी जा सकती—ईश्वरीय प्रेमभक्ति अवतार के भीतर से ही प्रकट होती है।

अब मनुष्य सब एक जैसे ही दिखाई देते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि दो मनुष्य एक जैसे नहीं मिलते। दो—जुड़े शरीर भी प्रकृति से भले ही एक जैसे हों परंतु मानसिक दृष्टि से एक नहीं होते। तो आध्यात्मिक दृष्टि से एक कैसे हो सकते हैं? श्रीरामकृष्ण इस सत्य को उद्घाटित करते हुए कहते हैं 'सब मनुष्य एक जैसे दिखाई देते हैं जैसे कचौड़ी-समोसे। लेकिन किसी में आलू मटर की पूर तो, किसी में नारियल किसमिस बदाम की पूर रहती है।' मनुष्य-मनुष्य में भेद है, ज्ञान-अज्ञान का, श्रद्धा का। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं यही तत्व 'कोई भी मनुष्य श्रद्धाहीन या विश्वासहीन नहीं होता। मनुष्य श्रद्धा से ही बनता है 'श्रद्धामयोऽयं मुरूषः' यह पुरुष व्यक्ति, मनुष्य श्रद्धामय है, श्रद्धा से ही बना है। लेकिन किसी में यह श्रद्धा तामसी है, किसी में राजसी है तो किसी में यह सात्विकी है, जैसा श्रद्धा-विश्वास वैसा ही ज्ञान, वैसी ही भक्ति, वैसा ही प्रेम होता है।

तामस अंतःकरण में तामस ज्ञान, तामस भक्ति, तामस प्रेम, राजस अंतःकरण में राजस ज्ञान, राजस भक्ति और राजस प्रेम और सात्विक अंतःकरण में सात्विक ज्ञान, सा० भक्ति सा० प्रेम।

अब मनुष्य में ईश्वर अवतीर्ण होते हैं। उन्हें पहचानें कैसे? श्रीरामकृष्ण तो स्वयं कहते हैं, अवतार को पहचानना सहज नहीं हैं। श्रीराम के रूप में ईश्वर अवतीर्ण हुए उस समय कितने ऋषि थे जिन्हें हम मंत्रद्रष्टा, संसार के पार गये हुए समझते हैं। सब कोई पहचान न सके। श्रीरामकृष्ण कहते हैं केवल मात्र बारह ऋषि समझ पाये थे कि वे भगवान के अवतार हैं, राजा दशरथजी के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। इतर सब ऋषि मुनियों ने उन्हें इतना ही कहा था 'आप स्वयं

ब्रह्म-शुद्ध ब्रह्म है' जब ऋषि-मुनियों की यह अवस्था है तो हम कैसे समझ सकते हैं। हम न हैं मुनि जो सब समय मनन करते हैं, तो फिर ऋषित्व तो दूर ही रहा।

श्रीरामकृष्ण और एक जगह कहते हैं 'जिस मनुष्य के भीतर प्रेम भक्ति उमड़ रही है, जो ईश्वर के प्रेम में मतवाला हो गया है, उनके लिए पागल हो गया है, उस मनुष्य में निश्चित ही ईश्वर अवतीर्ण हुए हैं।' और हम देखते हैं उन्नीसवी सदी में ऐसे सत्पुरुष अवतीर्ण हो गये थे, जो ईश्वर को छोड़ और कुछ भी नहीं जानते थे, जो ईश्वरमय हो गये थे। उन्हें कोई पूछता, आप ईश्वर को प्रमाणित कर सकते हैं? तो वे कहते 'भाई मैं तो उन्हें साक्षात् देखता हूँ जैसे तुमको साक्षात देख रहा हूँ। कि बहुना उससे भी स्पष्टरूप से।"

अपने ईश्वर दर्शन के बारे में वे कहते हैं, इस समय यहाँ कोई बाहर का आदमी नहीं है। 'एक गुप्त बात बतलाता हूँ सुनो, उस दिन हरीश मेरे पास ही था। मुझे एक दिव्य दर्शन हुआ, देखा—इस आवरण (देह) के भीतर से सच्चिदानंद बाहर निकल आए और बोले, 'मैं ही युग युग में अवतीर्ण होता हूँ' उस समय उन्हें लगा कि यह मन का खेल है, अपने ही ख्यालों में ये सब बातें कह रहा हूँ। फिर आगे वे कहते हैं, 'फिर चुपचाप देखने लगा, तब देखा कि वे ही कह रहे हैं—'चैतन्य ने भी शक्ति की आराधना की थी,' चैतन्य महाप्रभु परंप्रेमरूप ईश्वर के अवतार समझे जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण किसी-किसी को जैसे नरेंद्रनाथ केशवचंद्र आदि थोड़े ही व्यक्तियों के सामने यह अवतार तत्व प्रकट करते थे। और रामचन्द्र दत्त, गिरीश घोष जैसे व्यक्ति जो श्रीरामकृष्ण के अवतार तत्व का प्रचार करते थे उन्हें वैसा करने से, वे मना करते थे: कहते थे एक डाक्टर दूसरा नाटककार! वे क्या समझते अवतार तत्व?

नरेंद्रनाथ तो श्रीरामकृष्ण की इस उक्ति पर जो श्रीरामकृष्ण कहते थे 'जो राम है, जो कृष्ण है, वही इदानी रामकृष्ण है, तुम्हारे वेदांत के तत्व से नहीं परंतु साक्षात्' खिल्ली उड़ाते थे। ये ही नरेन्द्रनाथ दत्त, श्रीरामकृष्ण जब रुग्णावस्था में लेटे है, भयंकर वेदना अनुभव कर रहे हैं, उस समय कहते हैं, अगर श्रीठाकुर इस समय कह दें तो विश्वास करूँगा कि वे ईश्वर के अवतार है। और तत्काल ठाकुर कहते हैं 'अभी भी अविश्वासी' 'देखो, जो राम थे, जो कृष्ण थे—वे ही इदानी रामकृष्ण हैं।' और स्वामीजी अपने एक क्रिश्चन, प्रोफेसर को कहते हैं, जब वे विदेश लौटते हैं, और उस वृद्ध प्रोफेसर को, जिन्हें वे श्रद्धा करते थे, कहते हैं, श्रीरामकृष्ण देव ने सिर्फ कहा नहीं मुझे दिखाया, वे राम और कृष्ण हुए थे।

श्रीरामकृष्ण वचनामृत में एक समय कहते है, वे ही मनुष्य बनकर अवतार बनकर—भक्तों के साथ आते हैं। भक्त लोग—ईश्वर कोटि, मुक्त, सिद्ध सब उन्हीं के साथ वापस लौट जाते हैं। बाऊलों का दल अचानक आया, नाचा, गाया, फिर अचानक चला गया वे आए-गए कोई पहचान नहीं पाया।

हम साधारण मानव, सचमुच साधु लोगों को ही पहचान नहीं पाते तो अवतार को कैसे पहचाने? कोई पहिचानने की जरूरत भी नहीं। जीव कोटि के साधारण लोगों को चाहिए कि इस मनुष्य जन्म में किस प्रकार अवतीर्ण नरश्री श्रीरामकृष्ण से प्रेम भक्ति हो जाय, बढ़ता रहे यह प्रयत्न करें। और यह भक्ति का प्रयत्न हम किस प्रकार करते हैं गुरुदत्त जो मंत्र है उसका शाम संध्या यथा साध्य जप-ध्यान करते हैं, मंदिरों मे उनका दर्शन करते प्रणाम करते प्रार्थना करते हैं और जो कर्म मिला है उसे कर्तव्य बोध से करते हैं अगर भगवद् बुद्धि आती है तो सेवा होती है भगवद पूजा होती है।

यह क्रम है दिन-पर-दिन महीनों से सालों से चलता आया है। यह मानो रूटीन नित्य कर्म हो गया है। लेकिन हम कभी विचार नहीं करते कि हमारी आध्यात्मिक उन्नति हो रही क्या ? जैसे पू० स्वा० रंगनाथानंदजी कहते हैं 'Are we growing spiritually ?' "We are still children in religion ?" स्वामी विवेकानंदजी कहते हैं—'If we are seeing God in symbols and images we are just beginners'. It is good to be born in Church but not good to die there". इसलिए मुझे मालूम पड़ता है कि यह प्रश्न पूछने की जरूरत है।

दूसरी बात है कि, यह हो गया एक तरफा यातायात One way traffic, क्या हम जैसे भगवान की ओर जाते है वैसे भगवान भी हमारी ओर आते है क्या ? जवाब में इतना जरूर कह सकते हैं कि हाँ। श्रीरामकृष्ण कहते है, अगर हम दस कदम ईश्वर की ओर बढ़ते तो भगवान भी एक सौ कदम हमारी ओर आते हैं। यह रामायण में भी देखते है। सबरी एक अनार्य, आदिवासी जाति की नारी थी, भक्तिमती थी। उसके गुरुने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर कहा था कि एक दिन रामचंद्र तुम्हारे आश्रम में अपने भाई लक्ष्मण के साथ आएंगे। और वह दिन पर दिन अपनी कुटिया के दरवाजे पर राम की प्रतीक्षा करती बैठती थी उसमें धैर्य था, अनंत धैर्य था। इसीलिए कभी भी हताश या निराश नहीं हुई। और एक दिन श्रीरामचंद्र सचमुच उसकी कुटीया पर आये। वह उन्हें देखकर पागल जैसी हो गयी। क्या करें और क्या नहीं करें। कहाँ बैठाएं और क्या-क्या खिलाएं पिलाएं। कुटिया के बाहर पेड़ के नीचे बैठाकर बेर लाने गयी। जंगल से बेर लाए। लेकिन चखा नहीं खट्टे है या मीठे कैसे पहचाने ? उसने खुद ही चखना आरंभ किया और एक-एक चखती और दोनों भाइयों को खिलाती। और वे भी जूठे बेर खाते। यही प्रेमाभक्ति चाहिए। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कलियुग में नारदीयभक्ति ही एक साधन। स्वामीजी भी कहा करते थे 'प्रेमैव साधनं प्रेमैव साधनं' श्रीकृष्ण अवतार में भी यह श्रीकृष्ण का प्रेमास्वरूप गोपियों के लिए वृन्दावन में साकार हुआ था। गोपियाँ आनंद से नृत्य करतीं और श्रीकृष्ण भी उनके ताल पर बाँसुरी बजाकर नृत्य करते थे। गोकुल के लिए गोवर्धन धारण किया, माखन चोर की लीला की और भी कितनी लीलाएँ थीं। द्रौपदी के लिए वस्त्र देते रहे, दुर्योधन का महल छोड़कर विदुर के घर शाक भात खाया, सुदामा के चिवड़े खाये। अर्जुन के लिए सारथी बने। युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में जूठे पत्तल उठाए। पांडवों की रक्षा के लिए नाना युक्तियां रचकर कौरव पांडव युद्ध में उनकी सर्वतोपरि रक्षा की। यह सब प्रेम की ही लीला है।

और श्रीरामकृष्ण लीला में जब केशवचंद्र सेन बीमार पड़े तब उनके स्वास्थ्य के लिए उन्होंने श्रीजगदंबा से प्रार्थना की, मां केशव को कुछ हो जायगा तो मैं किससे बात करूंगा ? जगदंबा को उन्होंने डाब और चीनी की मनौती की थी। रूग्णावस्था में जब उन्होंने जाकर केशव को देखा और बहुत दुर्बल पाया तब वे अपने आँसुओं को रोक न सके और केशव को उन्होंने सान्त्वना दायक थोड़ी बातें की थीं। फिर उनके अंतिम रोग के अंत में सन् १८७४ में श्रीरामकृष्ण देव ने जब सुना कि केशव ने शरीर त्याग किया है वे इतने अभिभूत हो गये थे कि उन्होंने तीन दिन तक किसी से वार्तालाप नहीं किया सिर्फ चुप-चाप पड़े रहे थे। कुछ समय बाद उन्होंने कहा था 'केशव की मृत्यु की बात सुनकर मुझे ऐसा लगा कि मानो मेरा एक अंग अलग हो गया है" केशव को देखने वे कमल कुटीर जाते उनसे धर्म कथा करते। केशव भी दक्षिणेश्वर जाकर उनका दर्शन करते और जहाज में बैठाकर गंगा में सफर करते थे। दोनों को बहुत सी धर्मकथा होती, भजन-कीर्तन होता था।

वे सिर्फ केशव चंद्र से ही मिलते थे यह बात नहीं। वे ब्राह्मसमाज के और भी सभासदों से जैसे देवेन्द्रनाथ टेगोर, विजयकृष्ण गोस्वमी शिवनाथ शास्त्री, मणिमोहन मलिक, जय गोपाल सेन,बेणिमाधव पाल, काशीश्वर मित्र, प्रतापचंद्र मजुमदार आदि ब्राह्ममतावलम्बी व्यक्तियों के घरों में उत्सव के समय तथा अन्य समय भी गमनागमन करते थे। वहां भजन-संकीर्तन नृत्य सत्संग आदि होते थे।

श्रीरामकृष्ण केवल भजन कीर्तन के द्वारा ही आनंद लेते या देते नहीं थे। बल्कि हास परिहास थट्टा मजाक भी करते थे। और वह केवल युवा भक्तों में ही सीमित नहीं थी बल्कि प्रौढ़ पुरुषों के साथ भी चलती थी।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे भक्त भगवान का बैठक खाना है। तथा और भी बलराम बोस, रामचंद्र दत्त, मनमोहन मित्र, अधर सेन, कैप्टन विश्वनाथ, सुरेन्द्र आदि भक्तों के घर में उनका आना जाना सत्संग भजन कीर्तन होता था और वे भी समय-समय पर दक्षिणेश्वर जाते थे। वह एक अटूट संबंध था। भक्त जिस प्रकार भगवान को छोड़ रह नहीं सकते, भगवान भी अवतार रूप से भक्तों को छोड़ नहीं रह सकते।

एक समय विजयकृष्ण जी कीर्तन और नृत्य में विशेष आनंदित होते थे, उनसे मणिमोहन मल्लिक के घर की छत पर भगवत् कीर्तन-नृत्य शेष होने के बाद कहते हैं, "विजय को आजकल कीर्तन में आनंद होता है किंतु जब वह नाचता है तब मुझे डर लगता है कि छत समेत कहीं गिर न पड़े'? (विजयकृष्ण गोस्वामी उस समय सबसे मोटे थे इसलिए सब भक्त हँस पड़े।) श्रीरामकृष्ण आगे कहते हैं—हाँ, सच कहता हूँ। वैसी एक घटना हमारे देश में सचमुच हुई थी।—वहाँ लोग लकड़ी और मिट्टी से छत पाटते हैं। एक गोस्वामी किसी शिष्य के घर पहुँच कर वैसी ही दुमंजले की छत पर कीर्तन करने लगे। कीर्तन जमते ही नाच शुरू हो गया। वे गोस्वामी (विजय को संबोधित करते हुए) तुम्हारी तरह ही हृष्ट पुष्ट थे कुछ देर नाचने के बाद छत ही एकदम टूट गयी और गोसाइजी एकदम नीचे की मंजिल पर हाजिर" श्रीरामकृष्ण देव ब्राह्म भक्तों से लगभग ४ साल मिलते जुलते देखा, कि ब्राह्म पाश्चात्य भाव से भावित हुए है और उनके समाज में दलदल ही मची है। वे ठाकूर का 'त्याग भाव' ग्रहण करने में असमर्थ है। तब उन्होंने माँ जगदंबा से प्रार्थना की थी कि 'माँ मेरे पास त्यागी भक्त ले आना संसारी भक्तों से बातें करते करते मेरी जीभ जड़ हो गयी है, शाम होते ही वे कुटी की छत पर चढ़कर मानो युवा भक्तों को आह्वान करते 'अरे कौन कहाँ है, आओ चले आओ, मैं तुम लोगों के बिना रह नहीं सकता' इसके बाद ही वे युवा भक्त आने लगे जिसमें राखाल चंद्र घोष प्रथम आये थे।

राखाल श्रीरामकृष्णदेव के मानस पुत्र थे। वे यद्यपि उमर में १६-१७ साल के थे तब भी उस समय उनमें बालक भाव था मानो चार साल का लड़का रह-रह कर दौड़ता श्रीरामकृष्ण की गोद में बैठता और आनंद से निःसंकोच मानो स्तन-पान करता हो।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं 'मुझे आने पर राखाल अपने को भूल जाता था और उसके भीतर जिस प्रकार बालक भाव का आवेश होता था, वह बतलाना वर्णनातीत है।...मैं भावाविष्ट होकर उसे मलाई-मक्खन खिलाता और खेल खिलाता था। कभी-कभी उसे कंधे पर भी बिठाता था।" कैसा यह ईश्वर का अद्भूत प्रेम संबंध है? भगवान परं प्रेमस्वरूप जो हैं!

और एक चित्र, भक्त के दुःख से दुखित है भगवान। वृन्दावन में राखाल बीमार था। जब

श्रीरामकृष्ण को यह मालूम हुआ, श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'मुझे डर हुआ था कि वृन्दावन में राखाल शरीर छोड़ न दे। उस समय मैं माँ के पास व्याकुल होकर प्रार्थना करता था और माँ भी मुझे अभय दान देकर आश्वस्त करती थी।'

और एक छवि! भगवान भक्त को किस प्रकार देखते हैं? श्रीरामकृष्ण और नरेंद्रनाथ का अलौकिक या लौकिक प्रेम संबंध देखेंगे। सुरेंद्र नाथ मित्र के घर पर श्रीरामकृष्ण गये थे। उस सत्संग में भजन गाने के लिए नरेंद्र को बुलाया था। नरेंद्र का भजन सुनकर श्रीरामकृष्ण मुग्ध हो गये थे। भजन समाप्ति के बाद सुरेंद्र मित्र या रामचंद्र दत्त से श्रीरामकृष्ण देव ने उस अठारह साल के लड़के का वृत्तांत लिया था। उसके पास जाकर उसे गौर से देखने के बाद उसे दक्षिणेश्वर आने का निमंत्रण दिया था। जब दक्षिणेश्वर नरेंद्र गया वहाँ भी उसे भजन गाने पड़े। नरेंद्र कहता है 'भजन के बाद ही श्रीरामकृष्ण देव एकाएक उठकर मेरा हाथ पकड़ कर अपने कमरे के उत्तर की ओर के बरामदे में मुझे खींच ले गये बरामदे में प्रविष्ट होकर रामकृष्णदेव ने दरवाजा बंदकर देने पर (ठंड के कारण बरामदा टट्टू से घिरा हुआ था) मैंने सोचा सम्भवतः एकांत में मुझे उपदेश देंगे। ...एकाएक उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया, उनके नेत्रों से आनंदाश्रु की धारा बहने लगी और पूर्वपरिचित की तरह मुझे परम स्नेह से संबोधित करते हुए कहने लगे, तू इतने दिनों के बाद आया? मैं तेरे लिए किस प्रकार प्रतीक्षा कर रहा था, तू सोच भी नहीं सकता?' विषयी मनुष्यों के व्यर्थ के प्रसंग सुनते सुनते मेरे कान कान जले जा रहे हैं, मन की बात किसी से न कह सकने के कारण मेरा पेट फूलता जा रहा है। थोड़ी देर बाद मुझे वहीं ठहरने के लिए कहकर वे कमरे में चले गए और मक्खन मिस्री तथा कुछ मिठाई लाकर अपने हाथ से मुझे खिलाने लगे। मैं कहने लगा, 'मुझे मिठाइयां दे दीजिये, साथियों के साथ खाऊँगा' परंतु उन्होंने कुछ भी नहीं माना और कहा 'वे लोग भी खायेंगे तुम भी खाओ' इतना कहकर उन्होंने मुझे सब कुछ खिलाकर ही छोड़ा इसके बाद मेरा हाथ पकड़कर उन्होंने कहा, 'बोल, तू जल्दी ही एक दिन मेरे पास अकेला आयेगा तो?'

द्वितीय बार भी बिल्कुल वैसा ही श्रीरामकृष्ण देव का व्यवहार रहा खिलाना, बातचीत करना, प्यार और हास परिहास करके भी उन्हें मानों तृप्ति नहीं हो रही थी।

एक दिन स्वामी प्रेमानंदजी रामदयाल बाबू के साथ शाम में दक्षिणेश्वर गये थे। रात में उनका वहीं ठहरने का इरादा था। रात का खाना खाने के बाद श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में सोये और स्वामी प्रेमानंद और रामदयाल बाबू पूर्व की ओर के बरामदे में सोये थे, एक घंटे के बाद ही अपनी पहनी धोती बगल में दबाकर रामदयाल बाबू को जगाकर कहने लगे 'अजी सो गए?' प्रेमानंदजी कहते हैं 'हम दोनों चौंककर उठकर बैठे और कहा 'जी नहीं' सुनकर श्रीरामकृष्णदेव कहने लगे 'देखो, नरेंद्र के लिए मेरा हृदय मानो अंगोछा निचोड़ने की तरह मरोड़ रहा है। उसे एक बार भेंट करने के लिए कहना। वह शुद्ध सत्वगुण का आधार और साक्षात् नारायण है। बीच-बीच में उसे देखे बिना मैं नहीं रह सकता... सुबह होते ही नरेंद्र से मिलकर उसे यहाँ आने के लिए कहेंगे आदि कहकर वे श्रीरामकृष्ण देव के को शांत करने लगे। वे थोड़ी देर के लिए अपने बिस्तर पर लेट जाते थे किंतु फिर कुछ देर बाद उस बात को भूलकर पुनः हमारे पास आते और बहुत ही करुण भाव से व्यक्त करते कि नरेन्द्र को देखे बिना उनके हृदय में कैसी यंत्रणा हो रही है। उनकी इस कातरता को देखकर मैं बहुत विस्मित हुआ और सोचने लगा कि उसके लिए तो इनमें कितना प्रेम है।"

और एक समय बैकुंठनाथ सान्याल श्रीरामकृष्ण देव से मिलने दक्षिणेश्वर गये थे। उन्होंने देखा नरेंद्रनाथ के बहुत दिन तक न जाने के कारण श्रीरामकृष्णदेव बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं। उनका मन नरेंद्रमग्न हो गया है। वे नरेंद्रनाथ को देखने के लिए एकदम अधीर हो उठे और पुत्रविरह से व्याकुल होकर माता के समान रोने लगे। वे किसी तरह अपने को सम्हाल न सके। निरन्तर रोते रहे यह देखकर हम न जाने क्या समझेंगे यह सोचकर वे वहाँ से उठकर उत्तर बरामदे में चले गये। वहाँ से भी सुनायी पड़ा— वे रोते हुए कुछ कह रहे हैं, माँ उसे देखे बिना मैं नहीं रह सकता। कुछ क्षण बाद वे कमरे में आये और हमारे पास बैठकर कहने लगे इतना रोया, परंतु नरेंद्र नहीं आया। उसे एकबार देखने के लिए मेरे हृदय में बड़ी यंत्रणा होती है, छाती के भीतर मानो कोई मरोड़ रहा है, परंतु मेरे खिंचाव को वह नहीं समझता, ऐसा कहते हुए अस्थिर होकर फिर कमरे के बाहर गये। थोड़ी देर बाद फिर कमरे में लौटकर कहने लगे 'मैं बूढ़ा आदमी उसके लिए बेचैन हो रहा हूँ, इतना रो रहा हूँ, इसे देखकर लोग क्या कहेंगे तुम्हीं लोग बताओ। तुम लोग अपने आदमी हो, तुम्हारे सामने में कहने में लज्जा नहीं आती किंतु दूसरे लोग क्या सोचेंगे? तुम्हीं बताओ। '' नरेंद्रनाथ के प्रति ऐसा प्रेम देखकर हम लोग अवाक् हो गये थे। और एक दिन बैंकुठनाथ सान्याल कहते हैं 'श्रीरामकृष्णदेव की जन्म तिथि थी। सुबह से श्रीरामकृष्ण प्रसन्न थे बहुत से भक्त आये थे ठाकूर ने नवीन कपड़े पहने थे, भजन कोर्तन सुबह से चल रहा था श्रीरामकृष्ण बीच-बीच में कहते नरेंद्र नहीं आया? नरेंद्र दुपहर को आया और श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके बैठ गया श्रीरामकृष्ण उसे देखकर इतने आनंदित हुए कि उछलकर उसके कंधे पर जा बैठे और एकदम भावाविष्ट हो गये। सहज अवस्था प्राप्त होने पर उससे बातचित करने लगे और खिलाने लगे।' यह भक्तों के साथ भगवत् लीला अदभुत है।

और एक समय वे नरेंद्र को देखने के लिए निकल पड़े। निकलते समय याद आया आज रविवार है, नरेंद्र घर में नहीं मिलेगा। वे साधारण ब्राह्म समाज में गये। मंदिर में प्रार्थना हो रही थी। जिन ब्राह्मों ने उनको देखा। वे कहने लगे 'देखो वे आ रहे हैं' जिन्होंने श्रीरामकृष्ण को नहीं देखा था वे उन्हें देखने के लिए बेंचों पर खड़े हो गये। श्रीरामकृष्ण पीछे के दरवाजे से अन्दर गये थे भगवान प्रसंग देखने। सुनते ही भावाविष्ट हो गये थे। सभापति ने नहीं देखा या देखकर भी नहीं देखा। किसी ने बत्तियाँ बुझाई। अंधेरे में श्रीरामकृष्ण को अकेले देखकर नरेंद्र को दुख हुआ वे श्रीरामकृष्ण को लेकर बाहर आये और उनको दक्षिणेश्वर ले आए। इस प्रकार था भक्तों के प्रति श्रीरामकृष्ण का यानी भगवान का प्रेम।

आप कहेंगे रहने दीजिये यह रामकृष्णदेव का नरेंद्र के प्रति आकर्षण प्रेम का बर्ताव। नरेंद्रनाथ सप्तऋषियों में से एक थे, विवेक वैराग्य की प्रतिमूर्ति थे इसलिए यह भगवान का प्रेम आकर्षण सहेतुक है। अपने कार्य के लिए नरेंद्र को ले आये थे इसलिए उनके प्रति श्रीरामकृष्ण का प्रेम स्वाभाविक है।

दूसरे भी युवा भक्त-संन्यासी भक्त थे। उनके प्रति श्रीरामकृष्ण का ऐसा प्रेम दिखाई नहीं देता। क्यों? योगेन महाराज विवाह करने के बाद लज्जा से श्रीरामकृष्ण देव के पास आना नहीं चाहते थे लेकिन श्रीरामकृष्ण ने उन्हें कितने बुलावे भेजे और एक हिसाब की याद दिलाते हुए बुला कर लाए।

हरि महाराज स्वामी तुरीयानन्द जी वेदांत चर्चा में अपने बन्धु गंगाधर महाराज के साथ

गंगा किनारे घूमा करते थे। कभी अकेले ही वेदांत चर्चा में मशगूल होते थे। गंगाधर महाराज का दक्षिणेश्वर आना जाना था। श्रीरामकृष्णजी ने देखा कि हरि महाराज नहीं आ रहे हैं। तो गंगाधर महाराज से बुलाकर दक्षिणेश्वर खींच लाये थे। उसे अपने प्रेम का भागीदार बनाया था और अपना अवतार तत्व भी गुप्त समय पर महासमाधि के कुछ दिन पहले प्रकट किया था। निरंजन महाराज के साथ ठाकुर का सम्बन्ध स्मरण कीजिये। मेरा निरंजन बाप मेरा, कब तू भगवान लाभ करेगा ऐसा कहकर उसके लिए वे रोते थे कितनी बार। काम कांचन त्यागी युवा भक्तों के लिए श्रीरामकृष्ण देव का आकर्षण प्रेम होगा ही। यह भी स्वाभाविक है ऐसे आप सोचेंगे। यह भी ठीक नहीं। क्योंकि पूर्णचंद्र दास जो कि श्री ठाकुर के गृही भक्त थे उनके लिए भी श्रीरामकृष्णदेव का प्रेम दिखाई देता है। स्वामी शारदानन्द जी कहते हैं, 'पूर्ण के साथ भेंट करने के आग्रह से श्रीरामकृष्णदेव को हमने कभी आँसू बहाते देखा है—पूर्ण'को देखने के लिए आग्रह होते ही श्रीरामकृष्णदेव अब से दोपहर को कलकत्ता आ जाते और बाग बाजार-स्थित बलराम बसु के अथवा मुहल्ले के किसी व्यक्ति के घर पर उपस्थित होकर खबर भेजकर उसे विद्यालय से बुला लेते··· श्रीरामकृष्णदेव ने उस दिन स्नेहमयी जननी के समान उसे अपने हाथ से खिला दिया था और पूछा था, 'मेरे बारे में तेरी क्या धारणा है, बता तो ? भक्ति गदगद चित् की अपूर्व प्रेरणा से पूर्ण ने कहा था—"आप भगवान् है साक्षात् ईश्वर हैं।"

हाँ यह सच है कि नरेन्द्र को देखने के लिए श्रीरामकृष्णदेव जितने व्याकुल होते थे वैसी व्याकुलता दूसरे किसी युवा भक्त से मिलने के लिए नहीं दिखाई देती। एक समय जब एक युवा भक्त ने देखा था कि पूर्ण से मिल न पाने के लिए श्रीरामकृष्णदेव की आँख से अश्रुधारा बह रही है, तो वह उनका हो गया यह देखकर स्वयं श्रीरामकृष्ण उस युवा भक्त को कहते हैं, तुमने मेरी नरेन्द्र को देखने के लिए जो व्याकुलता होती थी वह नहीं देखी है। उसे देखने के लिए मेरे प्राण छटपटाते थे। नरेन्द्र के लिए इस प्रकार के आकर्षण का क्या कारण हो सकता है ?

अगर हम इस प्रकार का विचार करने पर समझ सकते हैं कि श्रीरामकृष्णदेव स्वामी विवेकानन्द जी को समाधि लोक में से अपने कार्य के लिए उठा कर लाये हैं। इसी लिए ऐसे वैराग्य सम्पन्न ऋषि के प्रति काम कांचन त्यागी श्रीरामकृष्णदेव का प्रेम स्वाभाविक ही है। यह हमारी साधारण मानव बुद्धि का उत्तर है। लेकिन इसका उत्तर श्रीरामकृष्ण स्वयं देते हैं। एक समय श्रीरामकृष्णदेव के युवा भक्त श्री ठाकुर से आग्रह करते हैं कि उन्हें भी भाव समाधि करा देनी होगी। श्री ठाकुर उन्हें बहुत समझाते हैं 'मैं तो चाहता हूँ तुम लोगों को सब दे दूँ। लेकिन माँ को इच्छा से ही सब कुछ होता है। इत्यादि लेकिन क्षण भर में ही कहते हैं, मगर नरेन कभी इस प्रकार भाव समाधि के लिए हठ करके कुछ नहीं माँगता है। वह चाहता है विवेक वैराग्य'। यह कहते ही श्रीरामकृष्ण कहते हैं, विवेक जैसा कोई रत्न है ?" यही नरेन्द्र में और हम जैसे साधारण जीवों में फर्क है। श्रीरामकृष्ण इसी लिए नरेन्द्र को प्रेम करते है, नरेन्द्र के लिए छटपटाते थे।

अब हम कह सकते हैं, कि श्रीरामकृष्णदेव को प्राप्त करने का उपाय हमें मिला। और वह है 'विवेक'। हम में जो थोड़ा बहुत विवेक है उसे ही जल देकर बड़ा करने से वैराग्य की वृद्धि होगी। विवेक वैराग्य सम्पन्न देखकर तब श्रीरामकृष्ण हमारे पास आयेंगे।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'मन में सदा विचार करना चाहिये—सत् क्या है और असत् क्या है, नित्य क्या और अनित्य क्या फिर जो अनित्य है उसे छोड़ कर नित्य वस्तु जो ईश्वर उसमें मन लगाना चाहिये। श्रीरामकृष्ण स्वयं किस प्रकार विवेक विचार करना चाहिये— सिखाते हैं, कामिनी और कांचन (जो कि पुरुष और स्त्री जाति दोनों के लिए महा आकर्षण है—ठाकुर एक जगह कहते हैं पुरुष स्वभाव से ही स्त्री से तथा स्त्री जाति भी स्वभाव से ही पुरुष से आकृष्ट होती है।) अनित्य हैं एक मात्र ईश्वर ही नित्य हैं। रुपये से क्या मिलता है—दाल रोटी और पहनने के लिए कपड़े—बस इतना ही और कुछ भी नहीं। रुपये से निश्चय ही ईश्वर नहीं मिलते। ठाकुर और आगे कहते हैं—"विवेक अर्थात् सत्—असत् का विचार और वैराग्य अर्थात् संसार की वस्तुओं के प्रति विरक्ति-उदासीनता—यह एकाएक नहीं प्राप्त होता—इसके लिए नित्य अभ्यास करना चाहिए कामिनी कांचन का त्याग पहले मन से करना पड़ता है। फिर प्रभु की इच्छा से वह त्याग मन से और शरीर से भी संभव है। अभ्यास योग के द्वारा कामिनी-कांचन के प्रति विरक्ति उत्पन्न होती है।" अपनी साधना पद्धति का उल्लेख करते हुए अपने भक्तों को कहते हैं। 'मैं स्वयं को समय-समय पर गालियाँ देकर देखता था कि मुझमें अहंकार जो सब अज्ञान का कारण है, उठता है या नहीं, और विचार करता था भला यह शरीर क्या है? सिर्फ हाड़ मांस का ढाचा है उसके अंदर क्या है? खून पीब आदि गंदी चीजें। जिस शरीर के भीतर सदा मल भरा हुआ है, उसपर भला इतना अहंकार क्यों किया जाए?" और एक समय भक्तों को कहते हैं, 'चावल पका है है या नहीं यह तुम जिस प्रकार देखते हो वैसे ही तुम विचार करके देखो कि यह संसार सत् या असत् नित्य या अनित्य है! संसार की दो चार वस्तुओं को परख कर तुम समझ सकते हो। मनुष्य जनमता है, कुछ दिन जीता है फिर मर जाता है। पशु का भी यही हाल है और वस्तु का भी विचार करके देखने पर तुम्हारी समझ में आ जाता है कि जो भी वस्तु नाम रूप से युक्त है उसकी यही गति है। पृथ्वी सूर्यलोक, चन्द्रलोक सभी के नाम रूप हैं अतएव सबकी यही गति है। इस प्रकार तुम जानते हो कि सारे संसार का यही स्वभाव है। इसी तरह जब तुम संसार को सचमुच अनित्य असत् अनुभव करोगे तब तुम उसपर प्यार नहीं कर सकते। जब तुम उसे बिल्कुल मन से त्याग कर वासना रहित बन जाओगे और जब तुम इस प्रकार पूर्ण त्याग करने में समर्थ हो जाओगे तभी तुम जगत्कारण परमेश्वर के दर्शन पाओगे।

सहज साधना सरल साधना

श्रीरामकृष्ण सरल मनुष्य देखकर भाव विह्वल हो जाते थे और उसके लिए उनके प्राण व्याकुल हुआ करते थे। अगर किसी पुरुष में वे बच्चों जैसी सरलता देखते वे उसके साथ 'एक हो जाते थे। श्रीरामकृष्णदेव के पास जब निरंजन महाराज आये, देखते ही ठाकुर ने उनके सरल स्वभाव को पहचान लिया, निरंजन महाराज उस समय पेंचेल करते थे। योग्य मेडियम मिलने पर भूत प्रेतों को उसमें उतारकर उससे बात करते थे। श्रीरामकृष्णदेव को देखकर योग्य मिडीयम सोचकर निरंजन ठाकुर से बोले थे आप मिडियम हो जाएँगे तो हम भूत को उतारेंगे बातें करेंगे। ठाकुर ने बच्चों जैसा सरलत्व निरंजन में देखा, वे मेडियम बनने के लिए राजी भी हो गये लेकिन दूसरे क्षण में ही निरंजन को बोले, 'देख निरंजन तू अगर भूत-भूत करेगा तो भूत ही बनेगा और भगवान भगवान बोलेगा तो भगवान ही बनेगा बोल तो कौन सा अच्छा है, 'निरंजन महाराज बोले थे, भगवान होना ही अच्छा है।' प्रथम बातचीत में ही यह बालक

ऐसा सरलपन देखकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण निरंजन पर खुश हो गये थे और अपने साथ में बैठा रहे थे। दूसरी भेंट में ठाकुर निरंजन को देख ही बैठे "रे मेरे बाप निरंजन, दिन तो बीते जा रहे हैं तू भगवान ध्यान कब करेगा ?" इस प्रकार कहते हुए श्रीरामकृष्ण ने निरंजन को अपनी बाहू से आलिंगन किया था।

श्रीरामकृष्ण अक्सर कहा भी करते थे कि अनेक तपस्या, अनेक साधना करने के बाद ही मनुष्य सरल और उदार होता है। सरल हुए बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। सरल हृदय मनुष्य के सम्मुख ही ईश्वर अपना स्वरूप प्रकट करते हैं। मनुष्य जितना सरल अर्थात् निष्कपट होता है उतना ही वह विश्वासी है उसका जल्दी ही विश्वास होता है। बच्चे सरल होते हैं निष्कपट होते हैं इसलिए उन्हें जो कहा जाता है वे पूरे मन से ग्रहण भी करते हैं तथा मानते हैं। उनमें कपटता, दुनियादारी विषय बुद्धि नहीं होती। लेकिन सरलता और मूर्खता प्रकाश अंधकार के सदृश है। इसलिए श्रीरामकृष्ण भक्तों को कहा करते थे भक्त अर्थात् विश्वासी बनो लेकिन मूर्ख न बनो। क्योंकि वे कहते थे। 'विश्वास और ज्ञान में, परस्पर सम्बन्ध है। विश्वास जितना बढ़ेगा उतना ही अधिक ज्ञान प्राप्त होगा। विश्वास न हो, तो ज्ञान की आशा करना वृथा है। (श्रद्धया लभते ज्ञानं)।

श्रीरामकृष्ण ने इस समय जगदम्बा कालीजी की पूजा करना आरंभ किया है। पूजा के समय भक्ति एवं श्रद्धा से रामप्रसाद तथा कमलाकान्त आदि देवी भक्तों के गाये भजन गाकर जगन्माता को एक मन से सुनाते हैं। जगदम्माता के दर्शन की उत्कंठा दिनों दिन बढ़ रही है। पूजा सेवा में ही घंटों समय बिताते हैं। शरीर से मन उठ कर देवी की सेवा में लगा रहता है। खान पान में मन नहीं। खाना तो खाया नहीं खाया तो नहीं। केवल एक मात्र चिन्ता कैसे जगदम्बा का दर्शन हो शास्त्र प्रवचन भगवान, देवी भागवत, रामायण सुनने में ध्यान बनी जाती है। सुना है आमले के पेड़ के नीचे बैठकर ध्यान करने से जो कामना हो वह सफल होती है, जैसे ही सुना कि श्रीरामकृष्ण ने रात्रि भोजन छोड़ या थोड़ा सा खाते ही थोड़े से लेटकर ही सारी रात पंचवटी में स्थित आमले के वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान करना शुरु किया है। हृदय क्रमानः उनके भांजे जो उनकी सेवा में थे अचानक रात्रि में मामा को कमरे में न देखकर पंचवटी में जाकर देखते हैं। श्रीरामकृष्ण आमले के पेड़ के नीचे एकाग्र हो ध्यान कर रहे हैं लेकिन यज्ञोपवीत वस्त्र उतारकर। दूसरे दिन पूछने पर कि श्रीरामकृष्ण रात में क्या करते हैं, श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "वहाँ पर आमले का एक वृक्ष है उसके नीचे बैठकर ध्यान करता रहता हूँ। शास्त्र में कहा गया है 'आमले के वृक्ष के नीचे बैठकर जो, जिस काम से ध्यान करता है, उसकी वह कामना पूर्ण होती है।' तुरन्त हृदय पूछता है—ध्यान करो लेकिन यज्ञोपवित्र तथा वस्त्र उतार कर नंगे बैठकर क्यों ? श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'तुझे क्या पता है ? इस तरह 'पाशमुक्त' होकर ध्यान करना चाहिए। जन्म से ही मनुष्य घृणा, लज्जा कुलशील, भय, मान, जाति तथा अभिमान इन आठ पाशों में बद्ध है यज्ञोपवीत भी—'मैं ब्राह्मण तथा सबसे श्रेष्ठ हूँ, इस प्रकार के अभिमान का चिह्न होने के कारण एक पाश है। माँ को पुकारने के लिए इन पाशों को त्याग कर एकाग्रता के साथ पुकारना पड़ता है, इसलिए मैं इन्हें उतारता हूँ। लौटते समय पुनः धारण करता हूँ। यह श्रीरामकृष्ण देव की सहज सरल बालकपन विचार से की जाने वाली अनोखी अमूर्त अद्भुत साधना शास्त्रज्ञ पंडित कैसे समझ सकते हैं।

बाल बच्चों में लज्जा घृणा मान अपमान नहीं होता इसलिए वे बालक जैसा आरोप अपने में करते तथा वैसा ही व्यवहार आचरण भी करते थे जैसे पहनने की धोती बगल में लेकर कमरे में घूमते फिरते। जाति-कुल शील, अभिमान त्याग करने के लिए उन्होंने एक भंगी के घर रात में जाकर उसके घर का पाखाना साफ किया था। यह भी एक दो दिन नहीं, जब तक इसका त्याग मन से नहीं जाता तब तक यह क्रम जारी था। पखाना साफ करके उसे वे अपने लम्बे बालों से सुखा के आते तथा यह एक जगन्माता की सेवा समझते थे।

श्रीरामकृष्ण ने सुना था कि 'समलोष्ठाश्म कांचन' हुए बिना अर्थात् साधारण लोग धन सुवर्णादि बहुमूल्य मानते है उनको सामान्य पत्थर की तरह तुच्छ ज्ञान किये बिना, शारीरिक भोग आकांक्षा सुखाकांक्षा से अपने को विमुक्त किये बिना मानव मन ईश्वर की ओर पूर्णतया धावित नहीं होता तथा योगारूढ़ नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने चांदी के कुछ सिक्के तथा मिट्टी के ढेले साथ लिए तथा गंगा किनारे बैठकर रुपया मिट्टी ही है तथा मिट्टी रुपया है, या 'यह रुपया वह मिट्टी एक ही है, कहते हुये गंगाजी में विसर्जित किया था यह समलोष्ठाश्म कांचन साधना न पहले किसी ने किया हुआ सुना है। यह श्रीरामकृष्ण देव के सरल विचार बुद्धि से निकला समझने में जितना सहज तथा सरल है उतना ही करने में कठिन है। यह साधन करने के लिए मन की त्याग प्रस्तुति कहां है ?

तीसरा एक सहज तथा सरल साधन श्रीरामकृष्ण देव के मन में आया वह है कि समस्त जीवों में शिव का वास है। यह शिवज्ञान साधन उन्होंने दक्षिणेश्वर में किया। काली मंदिर में भिखारियों को भोजन मिलता था। उन्होंने कई दिन उनके जूठे अन्न को देवता का प्रसाद मानकर भोजन किया तथा अपने मस्तक पर धारण किया था। तदन्तर जूठे पतलों को सिर पर रखकर गंगातट पर फेंककर अपने हाथ से झाड़ू द्वारा वह स्थल साफ किया था तथा यह मानकर कि अपने नश्वर शरीर से इस प्रकार देव सेवा का यत्किंचित् अवसर प्राप्त हुआ है स्वयं को कृतार्थ माना था।

चौथा सहज साधन बालक भाव या संतान भाव। श्रीरामकृष्णदेव में मातृ भक्ति विपुल मात्रा में थी। बचपन में पितृ वियोग से पितृ प्रेम से वंचित गदाधर जन्म से प्राप्त मातृप्रेम की ओर खिंचे। उससे गदाधर तथा माता चंद्रामणि को भी लाभ हुआ। चंद्रामणि देवी को पति वियोग को भूलने में सहायता मिली तथा माको प्राप्त कर गदाधर पितृयोग को भूल सका। वह मातृ प्रेम गदाधर को २५ साल की उमर तक मिला था इसलिए गदाधर जगदम्बा काली में मातृत्व का आरोप कर उनकी पूजा सेवा में लगा रहा और अपने को संतान भाव आरोपित कर बालक की भाँति जगन्माता को सजाना खिलाना तथा हठ करके रोना 'मां तूने राम प्रसाद, को कमलाकान्त को दर्शन दिये है मुझे क्यों नहीं देती ? मां मैं धन जन भोगसुख कुछ भी नहीं मानता मुझे दर्शन दे दो। मां तू जगज्जननी है मैं क्या जगत् के बाहर का हूँ। मैं भी तो तुम्हारी ही सन्तान हूँ तुमने जगत् की सृष्टि की है मेरी भी तो की है ? मुझे एक बार दिखा दो कि तुम कैसी हो। मां मैं तेरे बिना नहीं रह सकता, मुझे गोद में ले लो, इसी प्रकार व्याकुल होकर वे रोते रोते अपना वक्षस्थल भिगो देते ओर वे नही जानते कि क्या कह रहे हैं क्या कर रहे हैं। इस प्रकार दिनो दिन व्याकुलता बढ़ती है। तब भी जब दर्शन नहीं होता, तब हम पढ़ते है 'उनकी दृष्टि खड्गपर पड़ती है वे हाथ में खड्ग लेकर कह उठते कि 'अगर इस शरीर से तुम्हारा दर्शन न

हों तो क्यों इसकी पुष्टि तथा रक्षा करें कह कर गले की ओर लाते हैं। तब खड्ग गिर पड़ता है और जगन्माता का दर्शन होता है।

अद्भुत में यह सहज सरल तथा अनुकरण करने में कठिन साधन। तंत्र साधनाओं में तीन भावों के साधन की बात सुनी है। पशुभाव वीर भाव तथा देव भाव। किन्तु यह सन्तान भाव का साधन सुनने में नहीं आया।

पांचवां सहज साधन वह भी अद्भुत है। श्रीरामकृष्णदेव के सरल तथा विशुद्ध मन में आता है श्रीरामचंद्र जो त्रेतायुग में इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे तथा उनके कुलदेवता थे, उनका दर्शन करें। उन्होंने सोचा अगर उनको श्रीराम का दर्शन करना है तो हनुमान बनना पड़ेगा। हनुमान के भाव से भावित होना पड़ेगा। तब श्रीरामचंद्र जरूर दर्शन देंगे। सोचते ही तत्काल उन्होंने अपने ऊपर हनुमानजी का आरोप किया। कुछ ही दिनों में वे उस भाव में इतने तन्मय हो गये थे उस काल वे अपना अस्तित्व भूल गये थे। उस समय उनके आहार बिहार भी वैसे ही हुआ करते थे। अपने पहनने के वस्त्र को पूंछ की तरह लपेटकर वे अपनी कमर में बांधते थे। उछल-कूद कर चलते थे। फलमूलादि के सिवाय कुछ भी नहीं खाते थे तथा केले अमरूद आदि फल छिलके उतार कर खाने की इच्छा नहीं होती थी। पेड़ पर ही पंचवटी में अधिक काल बिताते थे और गंभीर स्वर से 'रघुवीर रघुवीर' कहकर निरंतर पुकारते थे। उस समय उनकी आंखे भी सदा चंचल रहा करती थी और आश्चर्य की बात एक और थी कि उस समय उनकी रीढ़ की हड्डी का अंतिम छोर लगभग एक इंच बढ़ गया था। इस प्रकार के दास्य भक्ति की साधना से उन्हें सीताजी के दर्शन हुए थे। दर्शन के बाद सीता श्रीरामकृष्णदेव के शरीर में ही विलीन हो गयीं।

छठी सहज सरल तथा कठिन साधना कभी किसी ने सुनी न होगी वह है। अपनी पत्नी में देवी षोडषी—त्रिपुर सुंदरी जो कि दश महाविद्या में गिनी जाती है। श्रीरामकृष्ण एक समय अपने कमरे में लेटे थे और उनकी पत्नी श्रीसारदादेवी उनकी पदसेवा कर रही थी। अचानक सारदादेवी ने श्रीरामकृष्णदेव से पूछा, मुझे तुम किस दृष्टि से देखते हो। श्रीठाकुर ने तत्काल उत्तर दिया था क्यों? "जो जगन्माता मंदिर में काली रूप में है जिसकी मैं पूजा करता हूं, जो माता नहबत में रहती है वही मेरी इस समय पदसेवा कर रही है।" यह उत्तर सुनकर श्रीसारदादेवी पुलकित हो गयी थी। श्रीरामकृष्णदेव को १८७३ को मई की पचीस तारीख को मालूम हुआ आज फल हारिणी काली पूजा है। उन्होने काली पूजा करने की इच्छा की किंतु मंदिर में नहीं—श्रीसारदादेवी में ही। उन्होंने पूजा कर सब आयोजन अपने कमरे में करके रखा। ठीक समय पर रात में उनको पूजा के लिए बुलावा भेजा। माताजी कमरे में आयी तथा देवता के आसन पर बैठ गयीं। यथा विधि पूजा समाप्त हो गयी श्रीरामकृष्ण तथा सारदादेवी दोनों ही उच्च भावों में दैवी भावों में समाहित हो गये तथा आत्मस्वरूप में एकरूप हो गये थे।

आप कहेंगे कि यह साधना नहीं है, लीलामय की लीला है। हो भी सकती है। लीलामय का कौन समझ सकता है? लेकिन मुझे तो यह एक साधना ही मालूम होती है। क्योंकि श्रीरामकृष्ण अपने भक्तों से कहा करते थे, मृण्मयी, काष्ठमयी देवीमें दुर्गापूजा होती है, मनुष्य रूपमें नारी रूप में नहीं हो सकती? कुमारी में चारपांच साल की लड़कियों में हमलोग कुमारी-दुर्गापूजा करते हैं तो यह विद्या स्वरूपिणी मानवीरूप धारणी सारदादेवी में ठाकुर की षोडषी पूजा पूजाक्यों नहीं मानी जाती दूसरी एक बात स्वामी सारदानंदजी षोडषी पूजा

के माध्यम में कहते हैं "मूर्तिमती विद्यारूपिणी मानवी देह को अवलंबन कर ईश्वर की उपासना करने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव की साधना की परिसमाप्ति हो गयी। उनके देव मानवत्व को सभी प्रकार से संपूर्णता प्राप्त हो गयी।" अतः यह एक अद्‌भुत साधना हैं जो कि सरल सहज परंतु कठिन है। इसके लिए कि मनुकी प्रस्तुति चाहिए।

विवेक शिखा–स्थायी कोष के दाता

११.	श्री रामलायक सिंह	—	राम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मिश्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०.	श्री राजीव कुमार राजू	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२.	श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	६८५ रुपये
२३.	श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये
२४.	श्री शतदल साधु खान	—	सोनारपुर(पश्चिम बंगाल)	१०० रुपये
२५.	श्री ए० जी० डगांवकर	—	यवतमाल	५१ रुपये
२६.	श्रीमती उषा गुप्ता	—	रायपुर (म० प्र०)	२०० रुपये
२७.	श्री पी० राम	—	पटना (बिहार)	२५१ रुपये

निवेदन—१ स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।

२. चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

होवे खंडन भवबंधन

—श्रीराम आसरे
यवतमाल (महाराष्ट्र)

आशिष दो रामकृष्ण भगवन्
कि होवे खंडन भवबंधन ॥
तुम्हीं हो जगत्पूज्य प्रभु आद्य
तुम्हीं हो वेदों के प्रतिपाद्य
तुम्हीं हो सकल कला आगार
तुम्हीं हो प्रभु मेरे आराध्य
अहे भगवंत करो अब अंत, विषय बलवंत
समर्पित तन मन जीवन धन । कि होवे खंडन भवबंधन ॥१॥
अवध में रामप्रभू हो गया
गोकुल कृष्णधाम हो गया
कामारपुकुर गांव का ही
गदाधर "रामकृष्ण" हो गया
सिद्ध अवतार, लगाने पार, नाव मझधार
रे मन छोड़ न वे चरणन । कि होवे खंडन भवबंधन ॥२॥
जितने धर्म मार्ग उतने
ठिकाना एक ही आखिर में
साध कर सफल साधनाएं
समन्वय धर्म में बांध लिया
तुम्हीं ने नित्य, दिखाया सत्य, मार्ग भयमुक्त
पथ हुआ जन-जन मनभावन । कि होवे खंडन भवबंधन ॥३॥
शंभु की जैसी दक्षसुता
उदधिदुहिता विष्णुकांता
वैसी ही अनुगामिनि माता
'सारदा" उद्धरि मोहगता
प्रेम की धार, जैसी गंगधार, तरण भवभार
ममतामयी मां का स्नेहसदन । कि होवे खंडम भवबंधन ॥४॥
तेजकी प्रखर दिव्य मूर्ति
उत्तिष्ठत" अग्निमंत्र स्फूर्ति
धर्मकी सभा विगत भ्रांति
'विवेकानंद' वंद्य यति क्षिति
यतीश्वरकृपा । प्रकाशित पथा । रही ना व्यथा
हुआ है पूर्ण सफल जीवन । कि होवे खंडन भवबंधन ॥५॥

ठहरो ! डट कर खड़े हो जाओ।

स्वामी शशांकानन्द, प्राचार्य
रामकृष्ण मिशन समाज सेवक शिक्षण मन्दिर
बेलुड़ म०, हावड़ा

परिव्राजक स्वामी विवेकानन्द की भ्रमण कहानी का श्री गणेश बाराणसी से हुआ था। स्वामीजी का परिव्राजक जीवन वास्तव जगत में अतीन्द्रिय जगदीश्वर के अनुसंधान की प्रचेष्टा थी, सर्वभूतों में सर्वनियन्ता के दर्शन की साधना थी। इस पर्यटन काल में उन्हें अद्भुत अनुभूतियाँ हुई थीं एवं असंख्य घटनाएँ घटी थी जिनसे स्वामी जी ने बहुमूल्यवान अभिज्ञताएँ प्राप्त की थीं।

अगणित मंदिरों और साधु-सन्तों की नगरी काशी में परिव्राजक स्वामी विवेकानन्दजी ने पूतसलिला माँ जाह्नवी की कलकल ध्वनि के मधुर संगीत पर आध्यात्मिक तरंगों को नाचते हुए देखा था। देवों के देव प्रभु विश्वनाथ, माँ अन्नपूर्णा और दुर्गा देवी के प्रतिदिन दर्शन करके उनके मन प्राण में असीम आनन्द की लहरें दौड़ती थीं। इस पुण्यभूमि से जड़ित भगवान बुद्ध, आचार्य शंकर की अनेक स्मृतियाँ उनके मन में प्रेरणाओं का स्रोत बहाती रहती थी।

बाराणसी में स्वामीजी श्रीयुत द्वारकादास जी के आश्रम में ठहरे हुए थे। एक दिन दुर्गा मन्दिर से लौट रहे थे कि अचानक उन्होंने देखा कि उस निर्जन पथ पर बन्दरों का एक दल उनका पीछा कर रहा है। स्वभावतः बन्दरों की मतिगति समझना कठिन था। स्वामी जी को भय लगा कि ये बन्दर उनका कुछ अनिष्ट कर सकते हैं, इसलिए स्वामीजी ने अपने चलने की गति बढ़ा दी। बन्दर भी तेजी से स्वामीजी का पीछा करने लगे। अब स्वामीजी द्रुतगति से दौड़ने लगे किन्तु बन्दर भी पीछे न रहे, वे भी तीव्रता से दौड़ने लगे। स्वामीजी और बन्दरों की यह अद्भुत दौड़ चल ही रही थी कि इसी बीच एक संन्यासी के शब्द स्वामीजी के कानों में पड़े, "ठहरो ! बंदरों के सामने डट कर खड़े हो जाओ।" ऐसा सुनकर स्वामीजी भी निर्भय होकर खड़े हो गये। स्वामीजी को इस प्रकार निर्भय अवस्था में देखकर बंदर एक मुहूर्त के लिए ठिठक कर खड़े रहे और फिर भाग गये।

घटना भले ही छोटी हो किन्तु इसमें मानव-जीवन के दर्शन का एक बड़ा ही मूल्यवान तथ्य निहित था। जीवन की सफलता का रहस्य हमें इसी घटना में मिलता है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्दजी ने अमेरिका में दिये गये अपने भाषणों में इस घटना का जिक्र एकाधिक बार किया था। श्रोताओं को यह घटना सुनाकर वे कहा करते थे कि प्रकृति के सम्मुख डटकर उसका सामना करना चाहिए, अविद्या के सम्मुख डटकर सामना करो, कभी भी भागना नहीं।

अज्ञान जनित भावना ही रज्जु में सर्प का भय उत्पन्न कर देती है। हम जितना भय पाते हैं, सर्प भी उतना ही सत्य प्रतीत होता है और हम भयभीत, दुर्बल, पसीनों से लथपथ, काँपते हुए प्रायः जड़वत हो जाते हैं। किन्तु ज्यों ही हमने धैर्य और साहस से काम लेते हुए निर्भय होकर उस सर्प का सामना करने के लिए लाठी और टॉर्च का आश्रय लिया कि अज्ञान या अविद्या भी दो ग्यारह हो जाती है। सर्प का वास्तविक स्वरूप दीख पड़ता है कि वह सर्प नहीं केवल रज्जु है। ऐसा प्रकृत ज्ञान होने पर सब भय दूर हो जाते हैं। वास्तव में ब्रह्म ही सत्य है जो अज्ञानवश जगत दीख पड़ता है।

२५ मार्च १८९६ ई० को हार्वर्ड विश्वविद्यालय की स्नातक दर्शन परिषद में 'वेदान्त दर्शन' पर भाषण देते हुए स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था, "रज्जु का सर्प

जैसा दीखना भ्रमात्मक है। भ्रम के समाप्त होने पर सूर्य का दीखना भी समाप्त हो जाता है। अज्ञानवश व्यक्ति जगत को देखता है, ब्रह्म को नहीं। जब उसे ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है, तब उसके लिए जगत नहीं होता। ... हमारी द्वैत दृष्टि ही सभी अनिष्ट का कारण है। जब मैं यह समझता हूँ कि मैं संसार से पृथक हूँ, तब ही पहले भय उत्पन्न होता है और तब दुःख का अनुभव होता है।"

जितना हममें यह माया जनित अभ्यास अधिक रहेगा कि हम यह दीखने वाली देहादि हैं एवं सब जीव पृथक-पृथक शारीरिक आस्था है, भय दुःख सन्ताप उतने ही अधिक हमें व्यापेंगे। और जितना हम इस मायाजनित अभ्यास को झिटककर सर्वभूतों में उसी एक आस्था 'ब्रह्म' को देख पाएँगे उतना ही निर्भय, सुखी और आनन्द का अनभव कर पाएँगे। भय तो हमने ही उत्पन्न किया है क्योंकि हमने अपने को दीन, हीन, दुर्बल और मरने वाला देहादि संघात समझ लिया है। जब हम अपने को देहरूप में देखते हैं तो देह मात्र ही हैं। अतः भय भी है।

इस भय से हमें कौन छुड़ा सकता है? वही वाणी को स्वामीजी ने सुनी थी, "ठहरो! बंदरों के सामने डट कर खड़े हो जाओ।" अर्थात् जो 'माया-जनित अभ्यास' बंदर की तरह हमें भयभीत कर रहा है उस भ्रमात्मक अविद्या से डरने से कोई भी नहीं छुड़ा सकता केवल हम स्वयं अपने को छुड़ा सकते हैं यदि उसके सामने डटकर खड़े हो जाएँ। विपरीत भावना द्वारा—विद्या या ज्ञान ही हमें मुक्त करने में सहायक हो सकता है।

१८९६ ई० में न्यूयार्क में दिये गये अपने भाषण, "बहुरूप में प्रतीयमान एक सत्ता" में स्वामीजी कहते हैं, "रेशम के कीड़े के समान तुम्हीं अपने चहुं ओर जाल का निर्माण कर रहे हो। कौन तुम्हारा उद्धार करेगा? तुम यह जाल काट फेंककर सुन्दर तितली के रूप में—मुक्त आत्मारूप में बाहर हो कर आओ। तभी, केवल तभी—तुम सत्य का दर्शन करोगे ......"

अमेरिका में ही पुनः "अमरत्व" विषय पर भाषण देते हुए स्वामीजी कहते हैं," तुम्हें कौन दुर्बल बना सकता है? तुम्हें कौन भयभीत कर सकता है? जगत् में तुम्हीं तो एकमात्र सता हो। तुम्हें किसका भय है। अतएव उठो, मुक्त हो जाओ। जान लो, जो भी विचार या शब्द तुम्हें दुर्बल बनाता है, वही अशुभ है। मनुष्य को दुर्बल और भयभीत बनाने वाला संसार में जो कुछ है वही पाप है और उसी से बचना चाहिए। "........." पिंजड़े को तोड़ डालनेवाले सिंह की भाँति तुम अपने बन्धन तोड़कर सदा के लिए मुक्त हो जाओ। तुम्हें किसका भय है, तुम्हें कौन बांधकर रख सकता है?—केवल अज्ञान और भ्रम; अन्य कुछ भी तुम्हें बांध नहीं सकता। तुम शुद्ध स्वरूप हो, निरवानन्द मय हो।"

स्वामी विवेकानन्द के विचार में भय और दुर्बलता ही मृत्यु है और पाप है और बल तथा निर्भयता ही जीवन है और पुण्य है। और भय है आत्मस्वरूप के अज्ञान के कारण। आत्मज्ञान से ही निर्भयता आती है और उस आत्मज्ञान की प्राप्ति ही एक मात्र उपाय है। आत्मज्ञान प्रदान करने वाले शास्त्र—उपनिषदों के बारे में स्वामीजी कहते थे, "उपनिषदों में यदि कोई ऐसा शब्द है जो बज्र-वेग से अज्ञान राशि के ऊपर पतित होता है, उसे बिल्कुल उड़ा देता है तो वह है 'अभीः' निर्भयता।"

अपनी आत्मा के प्रकृत स्वरूप का ज्ञान ही हमारे सब बन्धनों, अविद्या और माया जनित भय मुक्त करा सकता हैं। अतः हमें यह जानना होगा कि हम आत्मा हैं, इस आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है और जो कुछ है वह स्वप्न मात्र है, आभास मात्र है, मिथ्या है। इन विचारों को समझना होगा, अपने अन्तराल में उतारना होगा और इस सत्य की अनुभूति करनी होगी। मैं वही आत्मा हूँ जो सबके भीतर विराजमान है, इसी विचार को दृढ़ करना हैं।

न्यूयार्क में दिये गये अपने भाषण 'बहुरूप में प्रतीयमान एक सत्ता" में स्वामीजी इस भाव से परिपूर्ण एक

संन्यासी के सम्बन्ध में कह रहे थे, "भारत में एक संन्यासी थे—वे शिवोऽहं, शिवोऽहं की आवृत्ति करते थे। एक दिन एक बाघ आकर उनके ऊपर कूद पड़ा और खींच के जाकर उन्हें मार डाला। जब तक वे जीवित रहे, तब तक शिवोऽहं, शिवोऽहं ध्वनि सुनी गयी थी। मृत्यु के द्वार में, घोरतर विपद में, रणक्षेत्र में, समुद्रतल में, उच्चतम पर्वत शिखर में, गंभीर अरण्य में चाहे कहीं क्यों न पड़ जाओ, सर्वदा अपने से कहते रहो—'मैं वह हूँ, मैं वह हूँ, दिन-रात बोलते रहो, 'मैं वह हूँ।' यह सर्वोत्कृष्ट बल है, यही धर्म है।"

देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से परे अपने को आत्मा जानने वाला ही बलवान, निर्भय और धार्मिक होता है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में पाण्डवों और कौरवों की दोनों सेनाओं के बीच खड़े अर्जुन की परिस्थिति का अवलोकन करें तो देखने को मिलेगा कि अधर्म और अन्याय के विरुद्ध युद्ध करने के लिए गाण्डीवधारी महायोद्धा वीर अर्जुन शत्रु सेना में खड़े हुए अपने स्वजनों और सम्बन्धियों को देखकर करुणा और विषाद से अभिभूत हो गये थे। शरीर दुर्बल होकर काँपने लगा, खड़े रहने की भी शक्ति नहीं रही, सिर चकराने लगा, गाण्डीव धनुष हाथों से खिसकने लगा और अर्जुन माथे पर हाथ रखकर "मैं युद्ध नहीं करूँगा" ऐसा कहकर बैठ गये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लक्षणों को देखकर समझ लिया कि उन्हें मोह ने घर बनाया है। वह आत्मा होते हुए भी अपने को देह, मन, इन्द्रिय और बुद्धि समझ बैठा है। इसीलिए उसकी दुर्बलता को दूर करने के लिए उसके भीतर विद्यमान सर्वशक्तिमत्ता की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कराने के लिए श्रीकृष्ण उससे कहने लगे,

"क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥"

हे अर्जुन! तुम तो अविनाशी आत्मा हो जो सब दोषों से परे हैं जो न मरता है न मारता है। इसलिए यह दुर्बलता, भय, दुख कातरता आदि "नैतत्त्वय्युपपद्यते" अर्थात्—तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम तो आत्मा हो तुम्हे भय कैसा? दुर्बलता कैसी? यह तो तुम्हारे जैसे वीर को शोभा नहीं देती। "क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ"- हे पृथा-पुत्र, नपुंसकता को न प्राप्त हो। श्री कृष्ण का यह बहुत सुन्दर संकेत था कि तुम धर्मयुक्त के लिए आये हो और स्वयं ही पाप की ओर जा रहे हो। क्योंकि सबसे बड़ा पाप तो 'भय' ही है

सन् १८९७ ई० की बात है। आलम बाजार मठ में त्यागी संन्यासी और ब्रह्मचारियों के प्रति गीता पर विचार रखते हुए स्वामी जी ने कहा, "जान लो कि जिस किसी काम से तुममें गुप्त शक्ति पैदा हो वह पुण्य है; और जो तुम्हारे शरीर और मन को निर्बल बनाये, वह सचमुच पाप है। इस निर्बलता और इस हृदय दुर्बलता को दूर भगाओ। क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ। तुम बहादुर हो, वीर हो; यह तुम्हारे अयोग्य है।

यदि तुम लोग, ऐ मेरे बच्चो, दुनिया को यह सन्देश पहुँचा सको कि क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते—तो ये सारे रोग, शोक, पाप और विषाद तीन दिन में धरती से निर्मूल हो जायें। दुर्बलता के ये सब भाव कहीं नहीं रह जायेंगे। इस समय सर्वत्र है—भय के स्पंदन का यह प्रवाह। प्रवाह को उलट दो; उल्टा स्पंदन लाओ, और देखो, जादू का रूपान्तर! तुम सर्व शक्तिमान हो—तोप के मुंह तक जाओ, जाओ तो, डरो मत। अति अधम पापी से घृणा मत करो, उसके बाहर को मत देखो। दृष्टि को अन्तर्मुं करो, जहां परमात्मा का निवास है। तुम्ही को ध्वनि से विश्व को निनादित कर दो, तुममें कोई पाप नहीं है, तुममें कोई दुख नहीं है, तुम परमशक्ति के आगार हो। उठो, जागो और भीतर के देवत्व को अभिव्यक्त करो।"

★

जाने के निश्चय के साथ चित्रकूट जाते हैं, लेकिन उनकी अनिच्छा देखकर अपने निर्णय को त्यागने में उन्हें संकोच नहीं होता। वे किसी भी प्रकार से राम को कष्ट देना या असमंजस की स्थिति में डालना नहीं चाहते। वे राम के विरह में दशरथ की तरह शरीर त्याग नहीं देते, बल्कि अयोध्या के समस्त प्रलोभनों के बीच निर्लिप्त, राम का विछोह सहते हुए तपस्वी का सा जीवन व्यतीत करते हैं।

सत्यवचन के अपवाद

प्रत्येक महान नियम या आदर्श के अपवाद भी होते हैं। अविकसित लोगों अथवा बालकों को समझाने के लिए कभी-कभी अर्धसत्य या असत्य का आश्रय भी लेना पड़ता है। बालक नरेन्द्र (जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द हुए) जब बहुत अधिक शैतानी करते थे तो उनकी माँ उन्हें शान्त करने के लिए कहती थी कि यदि तू इस तरह का व्यवहार करेगा तो शिवजी तुझे कैलास नहीं आने देंगे। नरेन्द्रादि बालक एक बगीचे के पेड़ों पर चढ़कर बहुत उछल-कूद किया करते थे। उन्हें इससे विरत करने के लिए एक वृद्ध का कहना कि वृक्ष पर रहने वाला ब्रह्मदैत्य तुम्हारा सिर फोड़ देगा—यह भी इसी प्रकार के वचन का दृष्टान्त है। पुराणों की अतिशयोक्तियाँ एवं अर्थवादादि किसी उच्चतर सत्य विशेष को समझाने के लिए असत्य के आश्रय के दृष्टान्त हैं। श्रीरामकृष्ण की रुग्णावस्था में माँ सारदा दूध को बरन कर गाढ़ा करके पिलाती थीं, जिससे उन्हें यह पता न चले कि वे कितना दूध पीते हैं। इस प्रकार के प्रेम एवं कल्याण-कामना से प्रेरित प्रवंचनापरक कार्य सत्य के विरोधी नहीं हैं। महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण के अनेक कार्य इसी श्रेणी में आते हैं। इन सभी कार्यों के पीछे उद्देश्य की सत्यता ही आचरण की सत्य का निर्धारण करती है।

मानसिक सत्य (मन-मुख एक करना)

जब साधक व्यावहारिक और वाचिक सत्य के पालन में अग्रसर होता है तो कुछ समस्याएं उसके समक्ष उपस्थित होती हैं। सर्वप्रथम तो उसे अपने सभी कार्यों में अत्यधिक सतर्क होना पड़ता है जिससे वह सत्य विरोधी कार्य न कर बैठे। यह उसके लिए एक प्रकार का तप है, जिससे उसकी इच्छाशक्ति बलवती होती है। वस्तुतः निष्ठापूर्वक की गयी सत्य की साधना साधक को मानों एक नये भावराज्य में प्रवेश कराती है।

अपने सामान्य प्रमादपूर्ण, लापरवाही से बीतने वाले जीवन को परिवर्तित करने का इस तरह का प्रयत्न अन्तर्द्वन्द्वों की सृष्टि करता है। वस्तुतः अतिमूढ़ व्यक्ति तथा ब्रह्मज्ञानी पुरुष के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों के जीवन में संघर्ष व अन्तर्द्वन्द्व होते हैं। और साधक-जीवन के प्रारम्भ में तो वे अनिवार्य ही हैं। प्रथम तो साधक के उच्च आदर्श और उसकी अविजित वासनाओं के बीच संघर्ष होता है। द्वितीयतः सामाजिक मूल्यों एवं व्यक्तिगत आदर्श के बीच भी संघर्ष उपस्थित हो जाता है। ये द्वन्द्व विविध प्रकार से अभिव्यक्त होते हैं। प्रथम प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व विस्मरण, जिह्वाच्युति अर्थात् क्या बोलना चाहते थे क्या बोल गये, तथा असामान्य स्वप्नों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। उदाहरणार्थ एक शिष्य ने स्वप्न देखा कि वह गुरु के आदेश की अवज्ञा कर रहा है। दैनन्दिन जीवन में गुरु के प्रति अत्यन्त श्रद्धायुक्त होते हुए भी उसका यह स्वप्न उसके अन्तर्मन में प्रसुप्त अवज्ञा के भाव का द्योतक है।

दूसरे प्रकार के द्वन्द्व अर्थात् सामाजिक मान्यताओं एवं स्वयं की इच्छा एवं आदर्श के बीच का द्वन्द्व अधिकांशतः कपटाचार का रूप लेता है। एक संन्यासी से समाज एक विशिष्ट प्रकार के आचरण की अपेक्षा करता है, लेकिन यदि तदनुरूप चरित्र-निर्माण न हुआ हो तो वह केवल वाह्य आवरण मात्र बनकर रह जाएगा। इस विषय में श्रीरामकृष्ण एक बंगाली दोहा कहा करते थे—

कान तुलसे मुख हलसा, दोघल घुमटा नारी।
पानापूकुरेर शीतल जल, बड़ो मन्दकारी॥

अर्थात् ऐसा व्यक्ति जिसने कान में तुलसी खोस रखी हो, जो व्यक्ति अधिक बोलता है, लम्बी लम्बी घूँघट वाली स्त्री तथा ऐसे सरोवर का जल जिस पर काई जमी हो—बड़े अनर्थकारी होते हैं। इन सभी वस्तुओं की प्रतीत और अथार्थ में अन्तर है। जिस व्यक्ति ने कान में तुलसी लगा रखी है, वह धार्मिक न होते हुए भी स्वयं को धार्मिक दिखाना चाहता है। अधिक बोलने वाले व्यक्ति के वास्तविक चरित्र की थाह नहीं पायी जा सकती। लम्बे घूँघट वाली नारी सम्भवत: असती होते भी स्वयं को अत्यन्त लज्जाशीला बताने का प्रयत्न कर रही है तथा जिस सरोवर में काई जमी है, उसकी गहराई की थाह पाना कठिन है। ये दृष्टान्त मात्र हैं, लेकिन सत्य तो यह है कि हम सभी किसी न किसी प्रकार का कपटाचरण करते हैं। समाज हमें अपने व्यक्तित्व के बुरे पक्ष को छिपा कर शुभ पक्ष को व्यक्त करने को बाध्य करता है। श्रीरामकृष्ण की भाषा में हमारे 'मन और मुख' एक नहीं होते।

श्रीरामकृष्ण का आचरण इसके विपरीत था। उन्होंने कभी स्वयं को समाज की मान्यताओं के अनुरूप सजाने-सँवारने का प्रयास नहीं किया। एक बार वे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से मिलने गये। मुलाकात के बाद महर्षि ने श्रीरामकृष्ण को ब्राह्मसमाज की प्रार्थना सभा में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। श्रीरामकृष्ण ने कहा कि वे प्रार्थना सभा में जाने को तैयार है, लेकिन 'बाबू' नहीं बन सकेंगे। भाव अथवा समाधि की अवस्था में उनका बाह्यबोध लुप्त हो जाता है तथा कभी-कभी तो उनका वस्त्र ही शरीर से खिसककर गिर जाता है। ऐसे में लोग उन्हें अभद्र समझ सकते हैं तथा समाज की मर्यादा भंग हो सकती है। पहले तो महर्षि ने श्रीरामकृष्ण की इस आपत्ति को अग्राह्य किया, लेकिन बाद में कहला भेजा कि श्रीरामकृष्ण का ब्राह्मसमाज की सभा में न आना ही उचित है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, सत्य के साधक की अधिक महत्वपूर्ण समस्या स्वयं के आदर्शों और वासनाओं के बीच अन्तर्द्वन्द्व की है। इस सम्बन्ध में भी श्रीरामकृष्ण की सत्यनिष्ठा, बाह्य व्यवहार और मानसिक स्थिति के बीच पूर्ण ऐक्य उल्लेखनीय है। श्रीरामकृष्ण अखण्ड ब्रह्मचारी थे। लेकिन उन्होंने पूर्ण काकजय किया है या नहीं, यह जानने के लिए उन्होंने अपनी धर्मपत्नी माँ सारदा को अपने पास नौ माह तक रखा था। एक रात्रि को जब माँ सारदा उनके पास सो रही थीं, श्रीरामकृष्ण ने अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहा, "रे मन इसी का नाम नारी शरीर है, जो संसार के सभी लोगों के लिए अत्यन्त वांछनीय, प्रिय एवं भोग्य है। तुझे यह धर्म से प्राप्त है। अगर तू चाहता है तो इसका भोग कर लेकिन इसके भोग से तू भगवान से विमुख हो जाएगा। लेकिन मन में एक बात और बाहर दूसरी बात ऐसा मत कर।" स्वयं के मन को इस तरह सम्बोधित करने के बाद उन्होंने ज्यों ही माँ सारदा की देह को स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाया, त्यों ही उनका मन गहरी समाधि में लीन हो गया। इस दृष्टान्त में महत्वपूर्ण बात है श्रीरामकृष्ण का अपने मन को सम्बोधित करके उसे इच्छानुरूप आचरण के लिए प्रेतित करना, जिससे बाह्य आचरण और मन की सूक्ष्म वासना में कोई अन्तर न हो।

अन्तर्द्वन्द्वों के इस विस्तारित विश्लेषण का उद्देश्य सत्य साधना के तीसरे और सबसे महत्वपूर्णपक्ष-मानसिक सत्य या 'मन मुख एक करना'—की भूमिका तैयार करना है। जब तक हमारा अन्तर और बाहर, मन और मुख, कथनी और करनी, चिन्तन और व्यवहार एक नहीं हो जाता, तब तक हम सत्यप्रतिष्ठा नहीं कहला सकते।

चिन्तन और व्यवहार के द्वन्द्व को दूर करने के लिए पाश्चात्य मनीषियों एवं भारतीय आचार्य ने नाना उपाय बताए हैं। पाश्चात्त्य मनोविज्ञान की एक शाखा जिसे Behaviorist School कहा जाता है, व्यवहार

को महत्त्व देती है। इस पद्धति में अपने मन को व्यवहार के अनुरूप बनाने का निर्देश किया जाता है। प्रसिद्ध पाश्चात्य मनोविज्ञ फ्रायड वासनाओं को प्रशमित करने के बदले उन्हें खुली छूट देने के पक्ष में हैं। भोगेच्छा एवं वासनाएं स्वाभाविक रूप से सभी में विद्यमान रहती हैं। हमारा आचरण यदि हमारे मन में स्वाभाविक रूप से वर्तमान वासनाओं के अनुरूप हो तो हम अन्तर्द्वन्द्वों एवं कुण्ठाओं के शिकार नहीं होंगे उन्हें बुरा समझना कुण्ठाओं को जन्म देता है। एक अन्य पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक पद्धति में मन में उठ रहे अन्तर्द्वन्द्वों, विचारों आदि के निष्पक्ष साक्षी बनने का अभ्यास कराया जाता है। जिससे हम द्वन्द्वों से ऊपर उठ सकें।

भारतीय पद्धति इन सभी से भिन्न है। इसके अनुसार मन को व्यावहारिक सत्य अथवा वासनाओं अर्थात् मानसिक सत्य के अनुरूप रंगने के बदले धीरे-धीरे पारमार्थिक सत्य के अनुरूप रंगना पड़ता है। सभी प्रकार के काल्पनिक, तलीक चिन्तन पर आधारित साहित्य के पठन अथवा अध्ययन का त्याग इसका प्रथम सोपान है। इस तरह के काल्पनिक दिवा स्वप्नों के बदले लौकिक सत्य का चिन्तन श्रेष्ठतर है। लेकिन धीरे-धीरे इसे भी त्यागकर सत्य के साधक को सदा-सर्वदा केवल पारमार्थिक सत्य के चिन्तन में लगे रहना चाहिए। जिससे वह अपने मन को पूरी तरह उससे रंग सके।

मानसिक सत्य-साधन का एक युक्तिसंगत उपाय पातंजलयोगसूत्र में वर्णित है। यम नियमादि के पालन के विरोधी विचार जब मन में उठें, तो उन्हें दूर करने के लिए प्रतिपक्ष भावना करें। "वितर्क बाधने प्रतिपक्ष-भावनम्।" हिंसा, असत्य, चोरी, परिग्रह तथा अब्रह्मचर्य वितर्क बाधाएं हैं। इनकी वृतियाँ या विचार अहिंसादि के साधक के मन में उठकर उसकी साधना में विघ्न उपस्थित करती हैं। इन्हें दूर करने के लिए "प्रतिपक्ष भावना" अर्थात् हिंसादी के दुष्परिणामों का चिन्तन करना चाहिए। असत्य बोलने से व्यक्ति के मन में भय का संचार होता है, एक असत्य को छिपाने के लिए दूसरा असत्य बोलना पड़ता है। असत्य के प्रकट होने पर व्यक्ति के प्रति विश्वास नष्ट हो जाता है तथा मित्रता की क्षति एवं शत्रुता की वृद्धि होती। इस तरह के चिन्तन द्वारा सत्य के प्रति आस्था दृढ़ होती है, तथा मन और मुख एक होता है। इसके साथ ही साथ भीष्म, हरिश्चन्द्र, राम' युधिष्ठिर आदि महान सत्यव्रती महापुरुषों के जीवन एवं चरित्र का अनुध्यान कर सत्य के प्रति अपनी निष्ठा को दृढ़ करना चाहिए।

सत्य-प्रतिष्ठा

'सत्यमेव जयते'— सत्य की जय होती है। इस औपनिषदीय कथन की व्याख्या करते हुए श्री शंकराचार्य कहते हैं कि सत्याचारण करने वाले की जय होती है। आपाततः भले ही समाज में असत्यवादी तथा अधर्मियों की विजय होती दिखाई पड़े, लेकिन अंततोगत्वा सत्यवादी की ही जय होती है। इतिहास-पुराण के सैकड़ों उपाख्यान इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं।

पातंजलयोगसूत्र के अनुसार सत्य में प्रतिष्ठित होने पर वाक्य क्रिया फल के आश्रयत्व गुणों से युक्त होता है। "सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्" (२ : ३६)। ऐसे सत्यप्रष्ठि व्यक्ति के, 'तुम धार्मिक हो जाओ,' कहने से कहा जाने वाला व्यक्ति धार्मिक हो जाता है। 'तुम स्वर्ग प्राप्त करो,' कहने पर व्यक्ति स्वर्ग प्राप्त करता है। सत्यप्रतिष्ठ व्यक्ति के वाक्य अमोघ हो जाते हैं। यह सत्यप्रतिष्ठाजनित फल वस्तुतः प्रबल इच्छाशक्ति का द्योतक है। जिस व्यक्ति ने बारह वर्ष तक मन, वचन एवं शरीर से सत्य का पालन किया हो, जिसके वाक्य तथा चिन्तन सदा यथार्थ विषयक रहे हों, जो अपनी जीवन रक्षा के लिए भी कभी झूठ का आश्रय लेने की बात सोंचता तक नहीं, उसमें अमोघ इच्छाशक्ति का विकास होता है। उस व्यक्ति के सरल-सत्य वाक्य का श्रोता के मन पर सीधा प्रभाव पड़ता है और वह उसे स्वीकार करने तथा तदनुरूप आचरण करने को बाध्य होता है।

यह पूछा जा सकता है कि सत्यप्रतिष्ठ व्यक्ति यदि यह कहे कि 'मिट्टी जल हो जावे,' 'सूर्य पश्चिम से उगने लगे,' तो क्या ऐसा होने लगेगा ? इसका उत्तर यह है कि जिस व्यक्ति ने कभी असत्य-अलीक का चिन्तन ही न किया हो वह कभी स्वयं के सामर्थ्य के बाहर तथा प्रकृति के नियम के विरूद्ध बोल ही नहीं सकता। ऐसा भी कभी-कभी कहा जाता है कि सत्यप्रतिष्ठ व्यक्ति के मुँह से अनजाने में भी जो बात निकलती है, वह सत्य हो जाती है। यह कथन भी सत्य की साधना का रहस्य न समझने मात्र के कारण ही है। हम पहले ही देख चुके हैं कि सत्य के साधक को प्रतिक्षण कितना सतर्क होना पड़ता है। जिस व्यक्ति ने बारह वर्ष तक दिन-रात, अत्यन्त सजग एवं प्रमाद रहित रहकर असत्य चिन्तन एवं वचन का त्याग किया हो, क्या वह अजनाने में भी कभी असत्य बोल सकता है? वस्तुतः उसके इस प्रकार के वाक्य उनकी सत्य-अन्तर्दृष्टि द्वारा प्राप्त भविष्यत् ज्ञान के बहिःप्रकाश मात्र हैं। वरदानों और अभिशापों को भी इसी दृष्टि से देखा जा सकता है। सिद्ध महापुरुष अपनी साधना द्वारा अर्जित अन्तर्दृष्टि की शक्ति से अभिशप्त या अनुकम्पित व्यक्ति के पूर्व कर्मों तथा उनके अवश्यम्भावी परिणामों को जानकर उसी के अनुरूप वचन बोलते हैं, जो कालान्तर में फलीभूत होते हैं।

सत्य द्वारा विजय तथा अर्थफलाश्रयत्व को सत्य-पालन के अवान्तर फलों के रूप में ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि सत्य अपने आप में ही लक्ष्य है। वह साधन और साध्य दोनों ही है। यही कारण है कि श्रीरामकृष्ण धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, कर्म-अकर्म आदि सभी माँ जगदम्बा को समर्पित कर सकते थे, किन्तु 'सत्य और असत्य' का समर्पण नहीं कर सके। सत्य तो समस्त सद्‌गुणों का आधार है।

●

"भविष्य में क्या होगा, इसी चिन्ता में जो सर्वदा रहता है, उससे कोई कार्य नहीं हो सकता। इसलिए जिस बात को तू सत्य समझता है, उसे अभी कर डाल; भविष्य में क्या होगा, क्या नहीं होगा इसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता ? तनिक-सा तो जीवन है; यदि इसमें भी किसी कार्य के लाभालाभ का विचार करते रहें तो क्या उस कार्य का होना सम्भव है ? फलाफल देने वाला तो एकमात्र ईश्वर है।······तू इसकी चिन्ता न कर, अपना काम किये जा।"

—स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण की अन्त्य लीला

स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादिका– डॉ नन्दिता भार्गव

आज बृहस्पतिवार है, २९ अक्टूबर १८८५।

डाक्टर सरकार का मकान शाखारी टोला में है। दिन के दस बजे का समय होगा। डाक्टर सरकार के मकान पर मास्टर महाशय श्रीरामकृष्ण की हालत बताने के लिए आ पहुँचे क्योंकि श्रीरामकृष्ण की हालत प्रतिदिन कैसी रहती है, इसकी खबर लेकर डॉक्टर के यहाँ रोज आदमी भेजा जाता था।

डॉक्टर सरकार और मास्टर महाशय श्यामपुकुर के मकान में आये। श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं, पास में डॉक्टर भादुड़ी, डॉक्टर दोकौड़ी, छोटे नरेन्द्र, श्याम बसु आदि भक्त हैं। डॉक्टर ने नाड़ी देखी। पीड़ा का हाल उन्होंने पूछकर मालुम किया। क्रमशः ईश्वर के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। डॉक्टर भादुड़ी ने कहा कि संसार स्वप्नवत् है। डॉक्टर सरकार ने इसका विरोध करते हुए कहा "ईश्वर सत्य है और उसकी सृष्टि मिथ्या है, इसमें मैं विश्वास नहीं कर सकता।"

श्रीरामकृष्ण, "तुम प्रभु हो—मैं दास हूँ, यह बड़ा सुन्दर भाव है। जब तक यह बोध है कि देह सत्य है, जब तक मैं "और" "तुम" का भाव बना हुआ है तब तक सेव्य और सेवक का भाव ही अच्छा है। मैं वहीं हूँ। इस तरह की बुद्धि अच्छी नहीं। अच्छा मैं तुम्हें एक और बात बताऊँ? किसी कमरे को चाहे तुम एक किनारे से देखो या कमरे के भीतर से देखो, कमरा वही है।"

कुछ और बातों के बाद श्रीरामकृष्ण ने डॉक्टर सरकार को लक्ष्यकर कहा, "मैंने सुना है, तुम कहते हो कि मैं (श्रीरामकृष्ण) पागल हूँ। इसी से ये लोग (मास्टर महाशय आदि की ओर इशारा करके) तुम्हारे पास नहीं जाना चाहते :'

डॉक्टर सरकार (मास्टर की ओर देखकर)—"मैं इन्हें पागल क्यों कहने लगा। परन्तु हाँ। इनके अहंकार की बात अवश्य कही थी। भला ये आदमियों को पैरों की धूल क्यों लेने देते हैं?"

मास्टर महाशय—"नहीं तो लोग रोने लगते हैं।"

डॉक्टर सरकार—वह उनकी भूल है उन्हें समझाना चाहिए।

मास्टर महाशय—क्यों? सर्वभूतों में क्या नारायण नहीं है?

डॉक्टर सरकार—"इसके लिए मुझे कोई आपत्ति नहीं। तो फिर तुम्हें सब के पैरों की धूल लेना चाहिए।"

मास्टर महाशय—"किसी-किसी मनुष्य में उनका प्रकाश अधिक है। पानी सब जगह है, परन्तु तालाब में, नदी में, समुद्र में वह अधिक है। आप फैराडे को जितना मानियेगा, उतना ही क्या किसी नये "बैचेलर ऑफ साईन्स को भी मानियेगा?"

डॉक्टर सरकार—"हाँ, यह मैं मानता हूँ। परन्तु ईश्वर को बीच में क्यों लाते हो?"

मास्टर महाशय—"हमलोग एक दूसरे को नमस्कार इसलिये करते हैं कि सब के हृदय में ईश्वर का वास है। इन विषयों को आपने न अधिक पढ़ा है और न इन पर विचार किया है।"

श्रीरामकृष्ण (डॉक्टर सरकार से)—"किसी वस्तु में उनका प्रकाश अधिक है, तुमसे मैंने कहा, सूर्य की किरणें मिट्टी में गिरती है तो प्रकाश एक तरह का होता है, पेड़ों में और तरह का, फिर आईने में एक दूसरा ही प्रकाश देखने को मिलता है। देखो न, प्रहलाद आदि और ये लोग क्या बराबर है? प्रह्लाद का जीवन और मन सर्वस्व ही ईश्वर को अर्पित हो चुका था।"

डॉक्टर चुप ही रहे। सब लोग चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण (डॉक्टर सरकार से), "देखो, यहाँ के लिये (स्वयं को इंगित करके) तुम्हारे हृदय में कुछ प्रेम का आकर्षण है। तुमने मुझसे कहा था कि तुम मुझे चाहते हो।"

डॉक्टर सरकार—"तुम प्रकृति के शिशु हो, इसलिये इतना कहता हुं। लोग पैरों पर हाथ रखकर नमस्कार करते हैं, इससे मुझे कष्ट होता है। मैं सोंचता हूं ऐसे भले आदमी को भी ये लोग बिगाड़ रहे हैं। केशव सेन को उसके चेलों ने ऐसे ही बिगाड़ा था।"

श्रीरामकृष्ण ने बताया कि भक्त तीन तरह के हैं। प्रत्येक श्रेणी के भक्त का ईश्वर की सृष्टि के सम्बन्ध में भाव अलग-अलग है।

श्रीरामकृष्ण को सदा ही ईश्वर भाव हुआ करता है, इससे बीमारी की वढ़ने की सम्भावना है।

डॉक्टर सरकार (श्रीरामकृष्ण से)—"भाव को दबा रखिये मुझे भी बहुत भाव होता है? तुम लोगों से भी अधिक नाच सकता हूँ।"

छोटे नरेन्द्र—"(हँसकर) भाव अगर कुछ और बढ़ जाये तब आप क्या करेंगे?"

डॉक्टर सरकार—"उसके दबाने की मेरी शक्ति भी साथ ही बढ़ती जायेगी।"

श्रीरामकृष्ण—"अभी आप वैसा कह रहे हैं, कह सकते हैं।"

कुछ और बातचीत के बाद श्रीरामकृष्ण भक्तों की ओर देखकर डॉक्टर सरकार की ओर ईशारा करके कह रहे हैं—"देखो सिद्ध होने पर चीज नरम हो जाती है। पहले ये बड़े कड़े थे, अभी भीतर से नरम हो रहे हैं।"

डॉक्टर सरकार—"सिद्ध होने पर चीज उपर से ही नरम होती है, परन्तु इस जीवन में मेरे लिये यह बात नहीं होने की।"—सब हँसते हैं।

डॉक्टर विदा होने वाले हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"पैरों की धूल लोग लेते हैं, उन्हें क्या तुम मना नहीं कर सकते?"

श्रीरामकृष्ण—"क्या सब लोग अखण्ड सच्चिदानन्द को पकड़ सकते हैं?"

डॉक्टर सरकार—"इसलिए जो मत ठीक है क्या वह आप लोगों को नहीं बतलायेंगे?"

श्रीरामकृष्ण—"लोगों की अलग-अलग रुचि होती है। और फिर आध्यात्मिक जीवन के लिए सब लोग एक समान अधिकारी नहीं होते।"

डॉक्टर—वह किस प्रकार?

श्रीरामकृष्ण—"रुचि भेद किस तरह का है, जानते हो, जिसे जो भोजन रुचता है तथा सह्य है; उसी प्रकार का भोजन वह करता है। कोई मछली का शोरबा पसन्द करता है, तो किसी को तली हुई मछलियाँ अच्छी लगती है, कोई उनकी तरकारी बनाकर खाता है तो कोई पुलाव बनाकर। उसी तरह अधिकारी भेद भी है। मैं कहता हूं पहले केले के पेड़ में निशाना साधो, फिर दीपक की लौ पर, बाद में उड़ती हुई चिड़िया पर।"

डॉक्टर सरकार विदा लेकर चले गये। शाम हो गई है। श्रीरामकृष्ण ईश्वर—चिन्तन में मग्न हुये। इतनी पीड़ा है परन्तु वह मानो एक ओर पड़ी रही। श्रीरामकृष्ण बड़ी देर तक इसी अवस्था में रहे। श्रीरामकृष्ण प्राकृत अवस्था में आये। मास्टर महाशय पास बैठे हुये हैं। उनसे एकान्त में कह रहे है, देखो, अखण्ड में मन लीन हो गया था। इसके बाद जो कुछ

देखा, उसके सम्बन्ध बहुत-सी बातें हैं। ईश्वर को देखा उसकी बन जायेगी—कुछ दिन बाद। अब अधिक कुछ उससे कहने की आवश्यकता नहीं।"

श्रीरामकृष्ण श्याम बसु पर प्रसन्न हुये हैं। श्याम बसु की उम्र अधिक हो गई है, अब उनकी इच्छा है कुछ दिन ईश्वर चिन्तन करें। (श्रीरामकृष्ण का नाम सुनकर यहाँ आये हुये हैं। इसके पहले वे एक दिन और आये थे।)

श्रीरामकृष्ण (श्याम बसु से)—विषय-चर्चा बिल्कुल छोड़ देना। ईश्वरीय बातचीत छोड़ और किसी विषय की बातचीत न करना। विषयी आदमी को देखकर धीरे-धीरे वहाँ से हट जाना। इतने दिन संसार करके तुमने देखा तो सब खोखलापन है। ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु। ईश्वर ही सत्य हैं, और सब दो दिन के लिये है। संसार में है क्या? बस गुठली ही चाटना ही है। उसे चाटने की इच्छा होती तो है परन्तु गुठली में है क्या? ... इस संसार में बालू और शक्कर एक साथ मिले हुये है। चींटी की तरह बालू का त्याग करके चीनी को निकाल लेना चाहिये। जो चीनी ले सकता है, वही चतुर है। उनकी चिन्ता करने के लिये एक निर्जन स्थान ठीक करो—ध्यान करने की जगह।"

गले को कठिन पीड़ा होते हुये भी अहेतुक कृपासिंधु श्रीरामकृष्ण जीवों के दुःख से कातर हो उठा करते हैं। श्रीरामकृष्ण बसु को हिम्मत बँधा रहे हैं, अभय दे रहे शान्ति का पथ बता रहे हैं।[1]

[1] श्रीरामकृष्ण वचनामृत—तीसरा खण्ड, पृष्ठ ४१८-४२९, परिच्छेद २३ वां से लिया गया है।

(कहानी)

शार्क शिकार

— स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी द्वारा लिखित बंगला में तीन पुस्तकें हैं—"वर्तमान भारत", 'प्राच्य एवं पाश्चात्य" एवं "परिव्राजक'। परिव्राजक के कुछ अंश को "शार्क शिकार" का नाम देकर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। यह घटना तब की है, जब स्वामीजी विलायत गये थे।)

सुबह-सुबह खाने-पीने के पूर्व ही यह सुना गया कि जहाज के पीछे, बड़ी-बड़ी शार्क तैर रही है। आंखों से कभी पहले जीवित गतिशील शार्क को देखा नहीं था—पिछली बार लौटते वक्त स्वेज में जहाज कुछ समय के लिए रुका था, वह भी शहर के किनारे। शार्क आगमन का समाचार सुन हम सभी तुरंत उपस्थित हुए। सेकेन्ड क्लास जहाज के पिछले अंश में था—उसी की छत पर से बरामदे में खड़े कतारबद्ध स्त्री-पुरुष बच्चे सभी झुककर शार्क को देख रहे थे।

हम जब तक हाजिर हुए, तबतक शार्क मछलियां कुछ पीछे हट गई थीं। मन खिन्न हो गया। परन्तु देखा कि एक अन्य प्रकार की मछली तैर रही थी और साथ में कुछ छोटी मछलियां झकमक कर रही थी। बीच-बीच में बड़ी मछलियां थी। कुछ-कुछ हिलसा सा चेहरा, तीव्रता से इधर-उधर जा रही थीं। पहले सोचा, ये शार्क शिशु है। परन्तु पूछने पर पता चला—नहीं, वे शार्क शिशु नहीं है। इस मछली का नाम है बोनिता। पहले पढ़ा था कि ये मछलियां मालद्वीप में सुखाकर बेची जाती हैं। इसका मांस लाल होता है एवं ये बड़ी स्वादिष्ट होती है। उसकी तेजी एवं वेग देखकर अब प्रसन्नता हो रही थी। उतनी बड़ी मछली कितनी तेजी से तीर की भांति समुद्र के परदर्शी जल में संतरण कर रही थी। बीस मिनट, आधा घण्टा—इस प्रकार बोनिता का संतरण

एवं छोटी-छोटी मछलियों का चमकना देखा—फिर उबकर वापस आ रहा था कि लोगों ने चिल्लाना शुरू किया —"वह देखो। वह आ रही है।

देखा, दूर में एक विशालकाय काले रंग की वस्तु बह रही थी, पांच सात इंच के नीचे। धीरे धीरे वह आगे आ रही थी। एक विशाल चपटा मस्तक भी दिखा। तैरने का अंदाज विभिन्न था—एक ही बार गर्दन घुमाने के पश्चात पानी में हलचल मच गयी। कितना भीषण स्वरूप था; मंथर गति से वह मछली आ रही थी—आगे-आगे दो एक छोटी मछलियाँ, कुछ उस विशाल शार्क के पेट-पीठ के साथ खिलवाड़ करती हुई। कोई-कोई तो उसकी पीठ पर चढ़ बैठी थी। यही संगी-साथी सहित शार्क। जो मछलियां आगे-आगे जा रही हैं, उनका नाम हैं—पाइलट फिश। वे शार्क को उसका शिकार दिखलाती है। जो मछलियां शार्क के आस-पास घूमती हैं, वे शार्क के शरीर से भोजन ग्रहण करती हैं। उनके स्तन के पास एक कुशनुमा, नुकीली आकृति होती है—ठीक उसी प्रकार जैसे विदेशी जूतों के नीचे लगी कीलें हुआ करती है। इन्हीं के सहारे वे मछलियां शार्क के शरीर से चिपकी रहती है और शार्क के शरीर के कीड़े-ककोड़ों से अपना जीवन निर्वाह करती है। इन दोनों प्रकार की मछलियों के बिना शार्क चल ही नहीं पाती है। यही मछली एक पकड़ी गई। उसके वक्ष पर जूता रखकर उठाने के बाद पाया कि वह जूते से चिपक गई है। इस प्रकार ही वह शार्क के शरीर से भी चिपकी रहती है।

सेकेण्ड क्लास के व्यक्तियों में बड़ा उत्साह था। उसमें एक फौजी भी था—उसके उत्साह की तो सीमा ही नहीं थी; उसने न जाने कहां से खोजकर एक बरछी लाई एवं उसमें करीब किलो-भर मांस अच्छी तरह से बांधा। उसमें एक मोटी रस्सी को लगा, उसके ठीक नीचे एक लकड़ी बांधी गई। उसके बाद सारी वस्तु को पानी में डुबो दिया गया। जहाज के नीचे एक पुलिस नौका पहरा दे रही थी। उसी नौका पर दो व्यक्ति सो रहे थे—एवं यह स्वाभाविक था कि यात्रियों को उनपर गुस्सा आता क्योंकि वे उन्हें जहाज से झुकने को मना कर रहे थे। परन्तु वे अचानक बड़े अच्छे मित्र बन गए। चिल्लाहट एवं शोर सुनकर उन्होंने पहले समझा कि कोई हंगामा उपस्थित हो गया है। परन्तु कुछ क्षणों के बाद ही उन्हें यह ज्ञात हो गया वह शोर और कुछ नहीं वरन शार्क पकड़ने के लिए डाली गई बरछी को किंचित दूर हटाने की अनुरोध-ध्वनि थी। तब उन्होंने अधरों पर एक विराट मुस्कान विस्तारित एक लठ्ठे से उसे दूर हटाया और हम सभी शार्क के फंसने का इंतजार करने लगे—'सचकित नयनं पश्यति तव पन्थानम्" की स्थिति में मूर्तिवत बरामदे में झुके रहे। परन्तु, जिसके लिए मनुष्य इतना इंतजार करता है, वह कदापि उतनी आसानी से प्राप्त नहीं होता। परन्तु दुःखों का अंत भी अवश्यम्भावी है। तभी सहसा जहाज से कुछ दूर एक वृहदाकार जन्तु तैर उठा—साथ ही साथ—"वह आया, वह आया"—की ध्वनि गूंजने लगी। "चुप, चुप, ऐ बच्चो, सफेद टोपी उतारो, शार्क भड़क जाएगी"—की आवाजें उस जलक्षेत्र में विकसित होने लगी। उसके बाद पास ही में संलग्न उस मांस-पिंड पर उदराग्नि शांत करने के लिए वह विशालकाय मछली तेजी से आगे बढ़ी। और पांच हाथ आगे बढ़ी, फिर उसका मुंह सट गया। परन्तु यह क्या, चक्राकार मार्ग से होकर वह वापस जाने लगी। फिर वह भीम-पुच्छ थोड़ा मुड़ी और पुनः बरछी के समक्ष आ खड़ी हुई। फिर वही तेज गति—अब पकड़ा, अब पकड़ा। यह देखो, वह चित्त हो गई—खींचो-खींचो की ध्वनि और उसी के बाद शुरू हुई। पचास-साठ व्यक्तियों की खींच। कितने कम समय में यह सब कुछ हो गया। परन्तु आश्चर्य—मछली खुल गई—भाग गई।

यह होना ही था—उतनी हड़बड़ी में यह नगा हुई तो और क्या होगा? थोड़ा समय भी न दिया कि मछली ठीक तरह से फँसे। परन्तु,—"गतस्य सोचना नास्ति"—जो हो गया उसके लिए दुःख करने से कोई लाभ नहीं। शार्क तो बरछी से छुटने से ही तेजी से दौड़ी। सारी संगी मछलियों के साथ शार्क भाग गयी।

परन्तु निराश होने की बात नहीं—वह तो एक और चपटे मुंहवाली चली आ रही है। शार्क बात नहीं कर सकती, अन्यथा वह अवश्य अपने साथी को सावधान कर देती "देखो, वहां न जाना। वहां बड़ा विचित्र जंतु है। सुस्वाद मांस तो है पर हड्डी बड़ी कड़ी है एवं मुंह फँस जाता है।" कितने ही प्राणियों को उदरस्थ करने वाली शार्क अवश्य अपने घायल जबड़े को दिखा उसे मना कर देती और दूसरी मछली भी उसे मछलियों के पित्त एवं जड़ी-बूटियों से जबड़े को लेप करने की सलाह अवश्य देती। परन्तु अफशोस, यह सब कुछ न हुआ—जबतक शार्क कोई अन्य आहार न अविष्कार कर सकेगी, वे बातें कैसे करेगी? अथवा यह भी हो सकता है कि पहली मछली मनुष्य की चाल को समझ गयी हो और उसने सोचा होगा, "मैं ही क्यों धोखा खाऊँगी, इसे भी फँसने दो।" और उस दूसरी मछली को बिना कुछ बताए चली गई होगी।

"आगे-आगे भगीरथ और पीछे-पीछे गंगा"...

यह तो नहीं सुना गया, परन्तु देखा कि आगे-आगे पाईलट फिश और पीछे-पीछे शार्क अपने शरीर के साथ छोटी मछलियों को चिपकाए हुए।

आह, वह लोभ क्या छोड़ा जा सकता है? दस हाथ दूर स्वादिष्ट मांस-पिण्ड और फैलती हुई उसकी खुशबू—वह तो चपटे मुंह वाली ह्वेल ही बता सकती है। असली अँग्रेजी सूअर का मांस—ऊपर विशाल बरछी—और जल के मध्य छोटी मछलीयाँ गोपियों की भांति कृष्ण रुपी शार्क को घेरे खाने की तैयारी में।

इस बार सब चुप थे—हिलना-डुलना भी बंद—और हड़बड़ी भी नहीं। फिर जब वह शर्क चित्त हो गई और मांस-पिण्ड को निगलते-निगलते बरछी में अच्छी तरह सेफँस गई, तब शुरू हुई खींच। विस्मित शार्क ने छुड़ाने की कोशिश की एवं बरछी और अच्छी तरह से फँस गई। बरछी-बिद्ध शार्क को खींचने लगे—आबाल वृद्ध नर-नारी और पलभर में शार्क का शिर पानी से उपर आ गया। आधा शरीर जल से बाहर आ गया—बस थोड़ी और खींच की जरूरत थी। कितना विशाल मुख था। "खींचो"—और फिर समस्त शरीर जल से बाहर आ गया। "रुको, रुको, उन अरब पुलिसवालों से कहो कि पूँछ को बाँध दे ताकि इस विशालकाय शरीर को उठाया जा सके। देखो, सावधानी से उसकी पूँछ के प्रहार से धोड़े की टांग टूट जाती है।" "वह क्या है? यह तो ह्वेल के पेट के नीचे से झूलती हुइ अंतड़ियाँ हैं। अपने भार के कारण ही यह सब हुआ है। जो भी हो, उसे काट दो, बोझ भी कम जायगा। अब खींचो। यह तो रक्त का फव्वारा फुट पड़ा। चलो खींचो।" अब मछली जहाज के ऊपर आ चुकी थी। सावधानी से उसे रखा गया और रस्सी का बंधन खोल दिया गया।

"उफ! कितना विराट है। कितना शोर हुआ इसके गिरने पर। अब इस लकड़ी से शार्क के सिर पर मारो। फौजी भाई, यह काम तुम्हीं करो।"—एक ने कहा।—"सचमुच! तब ठीक है।"—फौजी ने कहा।

रक्तरंजित कपड़ों के साथ फौजी ने शार्क के सिर पर प्रहार करना शुरू किया। स्त्रियां चिल्लाने लगीं—"मारो मत, मारो मत।" परन्तु कोई न रुका। इस वीभत्स काण्ड के बाद सब रुक गये। किस प्रकार शार्क का पेट चीरा गया, कैसे रक्त की नदी बहने लगी, किस प्रकार वह शार्क छिन्न-देह, छिन्न-हृदय होकर भी कितनी देर तक काँपती रही, किस प्रकार उसकी देह से अस्थि, चर्म, मांस की ढेरी लग गयी—वह सब कहानी ही रहने दो। उस दिन खाने की सारी रूचि नष्ट हो गयी। सारी वस्तुओं में उसी शार्क की गन्ध का बोध होने लगा।

रामकृष्णमिशन समाज-सेवक शिक्षण मन्दिर

(सम्पूर्ण भारत के बेकार ग्रामीण युवकों के लिए)

रामकृष्ण मिशन समाज सेवक शिक्षण मन्दिर, रामकृष्ण मठ व रामकृष्ण मिशन बेलुड़ मठ की रामकृष्ण मिशन शारदापीठ बेलुड़ शाखा के विभिन्न प्रतिष्ठानों में से एक है।

इस प्रतिष्ठान में १८ से २५ वर्ष की आयु वाले स्नातक ग्रामीण युवकों को 'समाज—(Social Work) पर वैज्ञानिक प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रशिक्षण में आत्मनिर्भर लिए कृषि, गो-पालन, मधु-मक्खी-पालन, मत्स्य-पालन, हस्त-शिल्प एवं लघु उद्य. आधुनिक एवं वैज्ञानिक पद्धतियों का साधारण प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे वे अपने गां. लौटकर स्वयं अपने पाँव पर खड़े हो सकें और अपने गाँव के अन्य बेकार युवकों को आत्मनिर्भर होने में सहायता कर सकें।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-विज्ञान, शिक्षा सम्बन्धी, सामाजिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि पर इतना जोर दिया जाता है कि वे लौटकर अपने गाँवों में रात्रि-पाठशाला, निःशुल्क कोचिंग क्लास, होम्योपैथिक चिकित्सा, पेय-जल व्यवस्था, नीरोग एवं स्वच्छता के साधन तथा शिशु एवं युवकों के चरित्र-गठन तथा नैतिक उन्नति के कार्यक्रम चलाने का प्रयास कर सकें।

नौकरी करने की भावना से शून्य आत्मनिर्भर होने की आकांक्षा रखने वालों के लिए ही यह पाठ्यक्रम बनाया गया है। प्रशिक्षण की अवधि जून, १९९३ से फरवरी, १९९४ अर्थात् ९ महीने की है।

केवल रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के संगठनों के माध्यम से ही प्रार्थना-पत्र गृहीत होते हैं अतः निकटतम केन्द्र के माध्यम से प्रार्थना-पत्र भेजें।

इस प्रशिक्षण की भर्ती के लिए या अधिक जानकारी के लिए निम्नलिखित ठिकाने पर ३० अप्रैल, १९९३ से पहले ही सम्पर्क स्थापित करें :—

प्राचार्य
रामकृष्ण मिशन समाज सेवक शिक्षण मंदिर
बेलुड़ मठ, हावड़ा (पिन-७११२०२)
(प० बंगाल)

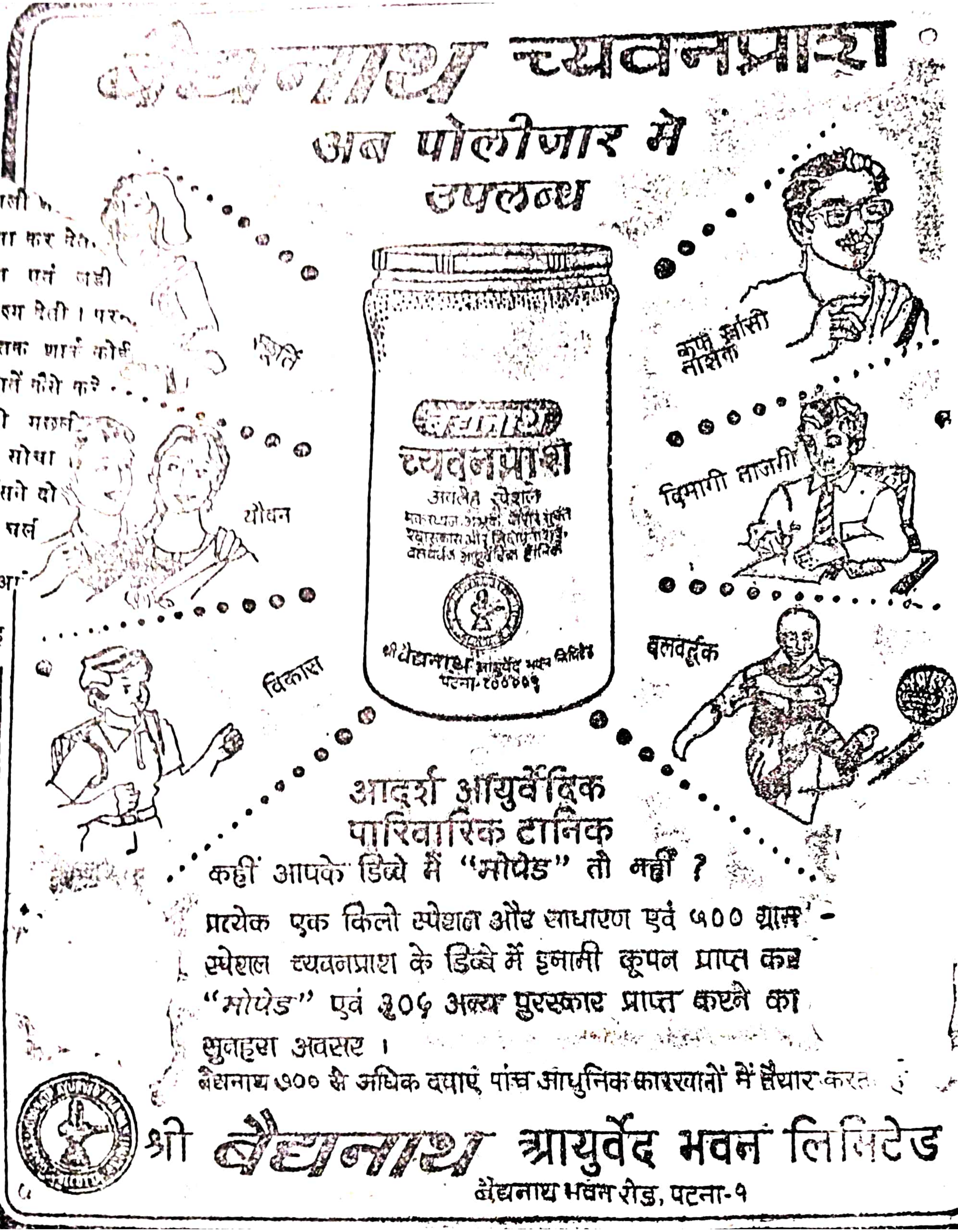

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार में
उपलब्ध
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह स्पेशल
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
विकास
बलवर्द्धक
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०६ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१